विषयानुक्रमणिका

गद्यपथ

निबन्धों का सारांश

प्रमुख स्थलों का विशदीकरण
अथवा
प्रमुख स्थलों का भावपल्लवन

प्रमुख स्थलों का संक्षेपीकरण

मेरे निबन्ध मेरी पसन्द के

निबन्धों का सारांश

प्रमुख स्थलों का विशदीकरण

अथवा

प्रमुख स्थलों का भावपल्लवन

प्रमुख स्थलों का संक्षेपीकरण

मानस का हंस

संस्कृति-संगम

निबन्धों का सारांश

अनुवाद

व्याकरण

हिन्दी निबन्ध

॥ श्रीः ॥

सफलता-सोपान

(शास्त्री : द्वितीय वर्ष)

गद्यपथ

निबन्धों का सारांश

(१) पेट

श्रीप्रतापनारायण मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'पेट' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने पेट के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। लेखक का कथन है कि पेट शब्द में केवल दो अक्षर है, पर इसकी महिमा अपरम्पार है। ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसे अपना पेट भरने की चिन्ता न हो। कहा जाता है कि यह समस्त विश्व ब्रह्माण्डोदरवर्ती है, ब्रह्मा के पेट में समाया हुआ है। पेट वह रस्सी है, जिससे बँधे बिना कोई नहीं रह सकता। भगवान् कृष्ण भी दामोदर कहे जाते हैं। संसार में सबसे ऊँचा स्थान माता का है, वह जन्मदात्री है। शिशु को जन्म देने के पहले वह उसे नौ मास अपने पेट में रखती है।

यदि हम अपने प्राचीन काल के इतिहास की ओर ध्यान दें, तो हमें पता चलेगा कि पेट के कारण ही महोदर तथा वृकोदर की प्रसिद्धि थी, क्योंकि इनका पेट बड़ा था। ये बहुत भोजन करते थे। इसी प्रकार देवताओं में गणेशजी लम्बोदर के नाम से प्रसिद्ध हुए, इनका भी पेट बड़ा था।

बड़े पेट की तो महिमा है ही, छोटा पेट भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। सुन्दर स्त्रियाँ मन्दोदरी तथा कृशोदरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका एक मात्र कारण उनका छोटा पेट है।

पेट की कितनी अधिक महिमा कही जाय? बालक-वृद्ध, विद्वान्-मूर्ख, उच्च-नीच, धनी-दरिद्र मनुष्य तथा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि कोई भी हो, सभी पेट की पूर्ति के लिए सतत प्रयत्न करते रहते हैं।

यह पापी पेट क्या नहीं कराता ? धर्म-अधर्म सभी प्रकार का कर्म करा देता है। इसकी पूर्ति के लिए प्राणी बड़ा-से-बड़ा पाप भी करने में नहीं हिचकता—

'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्'।

अतः मनीषियों ने इस पापी पेट को नरक या दोजख कहा है। यह पेट कभी भी अघाता नहीं है—

'नहिं पेट अघाहीं'।

यदि किसी के पास पेट भरने की ज्यादा सामग्री है और यदि कोई कुछ याचना करना चाहता है, तो वे दूसरों को बिलकुल नहीं देते—

'मोर पेट हाहू। मैं न दैहों काहू'॥

कवि रहीम ने भी पेट के विषय में अपना विचार प्रकट किया है। उनका कथन है कि—

रहिमन कहते पेट सों, क्यों न भये तुम पीठ।
भूखे मान बिगारहीं, भरे बिगारे दीठ॥

पेट की महिमा बड़ी ही विचित्र है, भूखे रहे तब भी कष्ट और भरे रहे तब भी कष्ट।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(२) कवि-कर्तव्य

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित निबन्धों में 'कवि-कर्त्तव्य' नामक निबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने कवि के कर्त्तव्य पर बहुत सुन्दर एवं भावपूर्ण प्रकाश डाला है।

लेखक का कथन है कि कवि-कर्त्तव्य से हमारा तात्पर्य हिन्दी में कवियों के कर्त्तव्य से है, जिसका इस निबन्ध में चार रूपों में वर्णन है—छन्द, भाषा, अर्थ तथा विषय।

छन्द—गद्य और पद्य दोनों में ही कविता हो सकती है। कविता का लक्षण जहाँ कहीं पाया जाय; चाहे वह गद्य में हो, चाहे पद्य में—वही काव्य है। लक्षणहीन होने से कोई भी छन्दोबद्ध लेख काव्य की श्रेणी में नहीं आ सकते।

जिन पंक्तियों में वर्णों या मात्राओं की संख्या नियमित होती है, उन्हें छन्द कहते हैं और छन्दबद्ध जो कुछ कहा जाता है, उन्हें पद्य कहते हैं।

जो सिद्ध कवि हैं, वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें, उनका पद्य अच्छा ही होता है, परन्तु सामान्य कवियों के लिए यह अपेक्षित है कि वे विषय के अनुकूल छन्द-योजना करें। हिन्दी के छन्दों में दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि प्रसिद्ध छन्द हैं। इन छन्दों का प्रयोग भी अब तक बहुत हुआ। यदि कवि समर्थ हैं तो उन्हें संस्कृत के छन्दों द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता आदि में भी कविता करनी चाहिए।

भाषा—कवि को अपनी कविता में ऐसी भाषा लिखनी चाहिए, जिसें सभी स्वाभाविक रूप से समझ सकें और उसके अर्थ को हृदयंगम कर सकें। पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ होने से विशेष आनन्द होता है। इसके विपरीत यदि पद्य का अर्थ समझने में जब कठिनाई होती है, तब उधर पाठक ध्यान नहीं देते, बल्कि उससे विरक्त हो जाते हैं। अतः क्लिष्ट शब्दों की अपेक्षा सरल शब्दों को लिखना ही वांछनीय है।

कविता लिखते समय व्याकरण के नियमों की ओर भी दृष्टिपात आवश्यक है, जिससे कविता परिष्कृत हो सके। वास्तव में कविता एक अपूर्व रसायन है। अतः उसकी रससिद्धि के लिए सावधानी की आवश्यकता है।

अर्थ—कविता में अर्थ का चमत्कार होना चाहिए। जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं है, वह कविता नहीं है, क्योंकि अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। कवि जिस विषय का वर्णन करना चाहता है, उस विषय से उसका तादात्म्य होना चाहिए, तभी कविता के अर्थ में सरसता आ सकती है। यदि कवि विलाप का वर्णन कर रहा है, तो उसके मन में यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयं विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार अन्य वर्णनों में भी कवि की तन्मयता आवश्यक है। आवश्यकतानुसार स्वाभाविक सरल अलंकारों का प्रयोग करना चाहिए। क्लिष्ट अलंकारों के प्रयोग से कविता क्लिष्ट हो जाती है और उसमें सरसता नहीं आती। इसके साथ-ही-साथ कविता में अश्लील शब्दों तथा ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।

अच्छी कविता वह है, जिसमें श्रृंगार आदि सुन्दर रस हों, क्योंकि रस ही

कविता का प्राण है। इसके विना सैकड़ों अलंकारों से अलंकृत होने पर भी कोई काव्य काव्याधिराज की पदवी को नहीं प्राप्त कर सकता—

'तैस्तैरलङ्कृतिशतैरवतंसितोऽपि
रूढो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि ।
नूनं विना घनरसप्रसराभिषेकं
काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः' ॥

विषय—कविता का विषय ऐसा होना चाहिए, जो मनोरञ्जक तथा उपदेशजनक हो। नायिकाओं के हाव-भावादि का वर्णन तो अब बहुत हो चुका, अब इस प्रकार के वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं है। अब आवश्यकता है सत् काव्य की, महाकाव्य की, जिससे लोककल्याण हो। जिन कवियों में काव्य-सृजन का सामर्थ्य नहीं है, वे मुक्तक कविताएँ लिखकर जन-रञ्जन कर सकते हैं। जनता की रुचि का आधार लेना आवश्यक है। आजकल के कवियों को खद्योत की उपमा दी गयी है।

अब न तो तुलसी के समान काव्य लिखने वाले, न सूरदास के समान पदावली लिखने वाले और न केशव के समान अलंकार लिखने वाले कवि हैं, अब तो केवल खद्योत के समान ही जहाँ-तहाँ चमकने वाले कवि हैं—

'अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करहिं प्रकाश'।

अन्त में कवि-कर्त्तव्य का सार-अंश निम्नांकित है—

१. कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार एवं मनोविकारों का वर्णन हो।

२. कविता में धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि का उदाहरण हो।

३. कविता में सूक्ष्म काल्पनिक बातें तथा क्लिष्ट अलंकार न हों।

४. कविता में भाषा स्वाभाविक, सहज और मनोहर हो।

५. कविता जिस छन्द में हो, वह सीधा, परिचित, सुन्दर और वर्णन के अनुकूल हो।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से उत्तम निबन्ध है।

(३) ईर्ष्या

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबन्धों में 'ईर्ष्या' नामक निबन्ध

का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने ईर्ष्या की परिभाषा, उसके प्रभाव तथा परिणाम पर बड़े सुन्दर शब्दों में प्रकाश डाला है।

ईर्ष्या एक मनोविकार है। जैसे दूसरे के दुःख को देखकर दुःख होता है, वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दुःख होता है—इसी को ईर्ष्या कहते हैं।

ईर्ष्या की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है। इसका प्राथमिक रूप यह है कि जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए परस्पर झगड़ा करते हैं, तब कभी-कभी ऐसा होता है कि उनमें से एक उसे फोड़ देता है, जिससे वह किसी के काम में न आवे। ईर्ष्या पहले इसी रूप में व्यक्त होती है।

ईर्ष्या प्राप्ति की उत्तेजित इच्छा नहीं है। वह तीन रूपों में प्रकट होती है—

१. क्या कहें, हमारे पास भी वह वस्तु होती जो उसके पास है।

२. हाय, वह वस्तु उसके पास न होकर हमारे पास होती तो अच्छा होता।

३. वह वस्तु किसी भी प्रकार उसके हाथ से निकल जाती, चाहे जहाँ जिस किसी के हाथ चली जाय।

इन तीनों रूपों में पहला वाक्य ईर्ष्या नहीं है, बल्कि स्पर्द्धा है शेष दोनों वाक्यों में ईर्ष्या का रूप है।

स्पर्द्धा वस्तुपरक होती है और ईर्ष्या व्यक्तिपरक। स्पर्द्धा से मनुष्य उन्नति करता है, ईर्ष्या से भीतर-ही-भीतर जलता रहता है।

ईर्ष्या अपने निकटवर्ती व्यक्ति से ही होती है, किसी दूरवर्ती व्यक्ति से नहीं। काशी में निवास करने वाला धनी व्यक्ति अमेरिका में रहने वाले व्यक्ति से ईर्ष्या नहीं करेगा। भारत का हिन्दी का कवि इटली के किसी कवि का महत्त्व सुनकर ईर्ष्या नहीं करेगा। बल्कि ईर्ष्या का भाव अपने पड़ोसी या अपने सहपाठी विद्यार्थी की बढ़ती देखकर होगा।

वास्तव में ईर्ष्या सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है, जिसके कारण हम दूसरों की उन्नति देखकर व्यर्थ दुःखी होते हैं।

अप्राप्त वस्तु के लिए ही ईर्ष्या होती है—यह कथन ठीक नहीं है। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारे पास कोई वस्तु है और वही वस्तु दूसरे के पास भी है। यह देखकर हमें दुःख भी होता है और बुरा भी लगता है। किसी

गरीब पड़ोसी को धीरे-धीरे धनी होते देखकर धनी व्यक्ति उससे दुःखी होने लगता है, बुरा भी मानता है। जब कभी ऊँची जाति का व्यक्ति नीच जाति के किसी व्यक्ति को अपने ही समान वस्त्र आदि धारण करते देखता है तो वह दुःखी होता है, इसे बुरा मानता है और मन-ही-मन कूढ़ता है। इसका कारण अहंकार है कि हम उच्च जाति के हैं, हम धनी हैं, हम बड़े हैं। अतः वह हमारी समता में कैसे आ गया? ये सभी बातें ईर्ष्या के कारण होती हैं।

प्रायः अधिकारियों में अभिमान होता है, जिसके कारण उनमें ईर्ष्या के भाव जागृत होते रहते हैं। कार्य के कारण लोग बड़े-छोटे होते हैं। एक व्यक्ति न्यायाधीश बनकर न्याय करता है, दूसरा व्यक्ति कारीगरी करके कारीगर बनता है। अपने-अपने कार्य के क्षेत्र में दोनों महान् हैं, परन्तु कहाँ न्यायाधीश और कहाँ कारीगर? ऐसा ऊँचा-नीचा विचार आते ही बड़प्पन और छोटेपन को लेकर इंर्ष्या उत्पन्न होती है।

अभिमान में औचित्य-अनौचित्य का ध्यान नहीं रहता। पुलिस का साधारण कर्मचारी भी अभिमानवश यह तो कहता ही है कि 'मैं जिस बदमाश को चाहूँ, पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। वह कभी-कभी यह भी कह देता है कि 'मैं जिसे चाहूँ, उसे पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'।

ऐसा अधिकारी व्यक्ति हर प्रकार की ईर्ष्या से ग्रस्त होता रहता है। ईर्ष्या अत्यन्त लज्जावती वृत्ति है। वह अपने धारणकर्त्ता स्वामी के सामने भी मुँह खोल कर नहीं आती। उसके रूप आदि का पूरा परिचय न पाकर भी धारणकर्त्ता उसको हरम की बेगमों से भी अधिक परदा कराता है। वह कभी प्रत्यक्ष रूप से समाज के सामने नहीं आती।

ईर्ष्या एक कुत्सित वृत्ति है। वह सभा-समाज, मित्र-मण्डली, परिवार—किसी के सामने खुल कर प्रकट नहीं होती। सभी मनोवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं—लोग क्रोध स्वीकार करते है, भय स्वीकार करते हैं, लोभ स्वीकार करते हैं, पर ईर्ष्या सब से परे है, कोई स्वीकार नहीं करता।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(४) साहित्य-देवता

श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित निबन्धों में 'साहित्य-देवता'

नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने साहित्य को देवता के रूप में चित्रित किया है। ये अपने साहित्य-देवता का चित्र खींचना चाहते हैं, परन्तु इस चित्र के साथ ही इनके जीवन का चित्र भी झलकता है।

चित्र तो अनेक प्रकार के होते हैं और उनके आकार भी भिन्न-भिन्न होते हैं, पर साहित्य-देवता के चित्र का आकार किस प्रकार का हो? ये देवता तो ऐसे हैं, जो वाणी के सरोवर में अन्तरात्मा के निवास की जगमगाहट हैं। लहरों से परे, पर लहरों से खेलते हुए से प्रतीत होते हैं। अन्य सभी चित्रों का तो मूल्य आँका जा सकता है, पर साहित्य-देवता का मूल्य आँकने में किसका सामर्थ्य है? इस चित्र का निर्माण कल्पना के आधार पर होता है। इसमें सुख-दुःख दोनों का रूप रहता है। साहित्य-देवता को किस संज्ञा से पुकारा जाय, यह बहुत ही कठिन है। साहित्य-देवता की महत्ता का कौन वर्णन कर सकता है?

यह साहित्य-देवता की ही करामात है कि व्यासजी के कृष्ण और वाल्मीकिजी के राम जन-जन के हृदयपट पर छाये हुए हैं। साहित्य का प्रभाव अनन्त है। भावुक कलाकारों के हृदय के भावों को विकसित तथा प्रसरित करने वाले एक मात्र देवता साहित्य ही तो है। यह मौन देवता अपने विचारों को देश-विदेश एवं समस्त विश्व में फैलाने के लिए एकमात्र साधन हैं। संसार में शान्ति-अशान्ति, उत्थान-पतन के कर्त्ता-धर्ता साहित्य-देवता की यथार्थ तस्वीर खींचना बड़ा ही कठिन कार्य है। इनकी व्यापकता नीलाम्बर के समान व्याप्त है। साहित्य-देवता कहाँ नहीं दृष्टिगत होते? नगाधिराजों के मस्तक पर से उतरने वाली नदियों की मस्ती भरी दौड़ में तथा लजीली पृथ्वी से लिपटे तरल नीलाम्बर महासागरों में विशेष रूप से निहित हैं। माँ सरस्वती की कृपा से जब अन्तःस्थल का स्वर निनादित होता है, तभी साहित्य-देवता का चित्र निर्मित होता है। अतः विद्वान् लेखक का कथन है कि 'अभी अन्तःकरण की स्वर-वीणा प्रस्फुटित नहीं हो रही है। हे साहित्य-देवता! हे मेरे प्रियतम! मैं तुम्हारा चित्र अवश्य खींचूंगा। देवता! अभी समय उपस्थित नहीं है, वह दिन आने दो, स्वर सध जाने दो'।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि सभी दृष्टियों से उत्तम निबन्ध है।

(५) भारतीय संस्कृति और नारी

श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित निबन्धों में 'भारतीय संस्कृति और नारी' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है।

विदुषी लेखिका का कथन है कि संस्कृति शब्द का उपयोग इतने सन्दर्भों तथा इतने अर्थों में होता आ रहा है कि उसकी एक परिभाषा देना दुष्कर नहीं तो कठिन अवश्य है।

प्राय: भारतीय संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि वह कल्चर का पर्याय नहीं है, बल्कि संस्कृति मानव-चेतना का ऐसा विकास-क्रम है, जो उसके अन्तरंग तथा बहिरंग की परिष्कृति करके विशेष जीवन-पद्धति का सृजन करती है।

प्राय: लोग संस्कृति और सभ्यता को एक ही समझ लेते हैं, परन्तु सभ्यता और संस्कृति में अर्थभेद है। सभ्यता मानव के वाह्य आचरण से सम्बन्ध रखती है और संस्कृति मानव-चेतना की प्राकृतिक ऊर्ध्व गति को प्रकाशित करती है। भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित जीवन-पद्धति सहज, उदार और स्नेहयुक्त बनती है।

पृथ्वी सभी मानवों की जन्मदात्री है। यह अपने बालकों को अजस्र दान से पालन करती है। वह हमारी माँ है और हम उसके पुत्र हैं—

'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:'।

भारतीय संस्कृति सभी संस्कृतियों से बढ़कर है। यह भारत की 'सजला सुफला मलयजशीतला' धरती पर विकसित है। यह परम उदार है, अनुदार नहीं।

यह भारत की धरित्री सर्वत्र एक समान है—कहीं तुषारमण्डित है, कहीं सुमनमयी है, कहीं तरंगमालिनी है, कहीं सस्यश्यामला है, कहीं प्रकृति की रमणीयता से परिपूर्ण है। भारत का मानव प्रकृति-नारी से प्रभावित होकर अपने ही पार्श्व में स्थित भारतीय नारी के सौन्दर्य से भी अवश्य प्रभावित है। प्रकृति के समान यह भी पूज्य है। यह भारत का प्राचीन सिद्धान्त है—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'।

पहले यह मातृदेवी के रूप में पूज्य थी। भारत की भूमि को आज भी भारत माता कहते हैं और चरणों में नमन करते हैं। नारी की गृहिणी की

संज्ञा है। गृहस्थाश्रम नारी तथा पुरुष दोनों के सहयोग से ही चलता है, विकसित होता है। पति-पत्नी दम्पति कहे जाते हैं। इन्हीं के द्वारा भारतीय संस्कृति पुष्पित तथा फलित होती है।

सच पूछा जाय तो भारतीय संस्कृति अनादि है। इसका आदि स्रोत वेद-कालीन जीवन-पद्धति है, जो बहुत ही प्राचीन है, फिर भी हमारे वर्तमान जीवन को उसी प्रकार प्रकाश देने में समर्थ है, जिस प्रकार भगवान् सूर्य अपनी रश्मियों से प्रकाश देते हैं।

सृष्टि के आरम्भ में केवल एक परंब्रह्म ही रहता है, जो चिरंतन है, सनातन है। जब उसके मन में सृष्टि के विस्तार की भावना होती है तब वह अकेले होते हुए भी बहुत हो जाता है—

'एकोऽहं बहु स्यामः'।

सर्वप्रथम वह अपने को दो रूपों में विभक्त करता है—प्रकृति एवं पुरुष।

इस प्रकार परमेश्वर की सृष्टि विकसित होती है। बिना प्रकृति (नारी) के सृष्टि असम्भव है। अतः प्राचीन काल से ही प्रकृति (नारी) का गुणगान होता रहा है। वे दिव्य देवियों के रूप में प्रसिद्ध हैं—अदिति, दिति, श्रद्धा, उषा आदि।

इन दिव्य देवियों की अनेक स्तुतियाँ मिलती हैं—

'माता रात्रि सौंप जाना तू, हमें उषा के संरक्षण में।
उषा हमें फिर सौंप दे सन्ध्या, समय विदा के क्षण में'।।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति को विकसित करने में प्राचीन नारियों का बहुत बड़ा सहयोग रहा। वे बड़े-बड़े ऋषियों-महर्षियों की पत्नियाँ रहीं, ब्रह्मवादिनी रहीं। आज भी ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी का स्वर भारतीय संस्कृति को लक्ष्य करके गूँज रहा है, जो एक जीवन-गीत है—

'असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय'।।

विदुषी लेखिका द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(६) शिरीष के फूल

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित निवन्धों में 'शिरीष के फूल' नामक निवन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक का कथन है कि मैं जहाँ बैठ कर यह लेख लिख रहा हूँ, वहाँ चारों तरफ शिरीष के पेड़ सुशोभित हैं और ग्रीष्म के ऋतु में भी ऊपर से नीचे तक फूलों से सजे हुए हैं। फूल तो अनेक हैं और समय से सभी फूलते रहते हैं, परन्तु शिरीष की उन फूलों से विशेषताएँ हैं। यह वसन्त के आगमन से लेकर आषाढ़ तक खूब लहराता है, अनुकूल समय होने पर भाद्रपद मास तक भी लहराता है। इसके फूल को देखने से हृदय आह्लाद से भर जाता है। शिरीष के वृक्ष ऊँचाई तक जाते हैं और छायादार होते हैं। इसके फूल बहुत ही कोमल होते हैं। संस्कृत-साहित्य में इसके पुष्प का बहुत वर्णन है। महाकवि कालिदास का कथन है कि शिरीष का पुष्प इतना कोमल होता है कि वह केवल भौंरों के पदों का कोमल दबाव तो सहन कर सकता है, परन्तु पक्षियों के पदों का दबाव बिलकुल नहीं—

'पदं सहेतं भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणाम्'।

शिरीष के पुष्प कोमल अवश्य हैं, परन्तु इसके फल बहुत कठोर होते हैं। वे परस्पर खड़खड़ाते रहते हैं और अन्त में नीचे पृथ्वी पर गिर जाते हैं—

धरा को प्रमान यही तुलसी,
जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना।

वास्तव में यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह एक समान रहता है; वह हार नहीं मानता। 'न ऊधो का लेना न माधव का देना' वह इसी लोकोक्ति को चरितार्थ करता रहता है। ग्रीष्म काल में जब पृथ्वी और आसमान दोनों तप्त रहते हैं, तब भी पता नहीं, ये मस्ती के साथ कहाँ से 'रस' पाते रहते हैं। इस सम्बन्ध में वनस्पतिशास्त्रियों का कथन है कि पवन से इन्हें 'रस' मिलता है। जो भी हो, परन्तु यह शिरीष सहृदय कवियों को अपने सौन्दर्य से प्रभावित करता रहा है। प्राचीन कवि कालिदास इससे विशेष प्रभावित थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में शिरीष पुष्प का वर्णन किया है। राजा दुष्यन्त ने एक बार शकुन्तला का चित्र बनाया, लेकिन उस चित्र को बार-बार देखकर भी उनके मन में ऐसी बात

उठती थी कि कहीं इस चित्र में त्रुटि रह गई है; इस चित्र को सजाने में कहीं कोई चीज छूट गई है। वे बहुत देर तक चिन्तित रहे, बाद में उनकी समझ में आया कि शकुन्तला के कानों में शिरीष पुष्प देना भूल गये हैं—

'कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न या शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे'।।

शिरीष का पुष्प अपने गुणों से लोक की मंगलकामना करते हुए मानो उन्हें शिक्षा दे रहा है, उन्हे संकेत कर रहा है कि मेरी ओर देखो—मैं किस प्रकार सुख-दुःख में समान रूप से स्थित हूँ।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि सभी दृष्टिकोणों से प्रशस्त निबन्ध है।

(७) रजिया

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित निबन्धों में 'रजिया' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह एक व्यक्तिनिष्ठ संस्मरणात्मकनिबन्ध है, जिसका सम्बन्ध लेखक से है।

लेखक की बाल्यावस्था थी। अभी वह बाल-विद्यालय में पढ़ता था। एक दिन विद्यालय से ज्यों ही घर आया तो देखा कि एक चूड़िहारिन अपनी कन्या रजिया के साथ बरामदे में बैठी हुई थी। कानों में बालियाँ, गले में चाँदी का हैकल, हाथों में चाँदी के कंगन, पैरों में चाँदी के गोड़ाई—भरबाँह की बूटेदार कमीज पहने, काली साड़ी के छोर को लपेटे, गोरे चेहरे पर लटकते हुए कुछ बालों को सँभालने में परेशान वह छोटी-सी लड़की रजिया आकर्षण की केन्द्रबिन्दु थी।

बालस्वभाववश जब लेखक अपना बस्ता-सिलेट चौकी पर रखकर षष्ठी की पूजा में बने हुए ठेकुआ खाने लगे, तब भाभी ने रजिया से विनोद में कहा कि 'देखना, बबुआ का खाना मत छू देना'।

लेखक की माँ बचपन में ही चल बसी थी, मौसी ही पालन-पोषण कर रही थी। अतः उन्होंने तुरन्त ही रजिया के लिए भी ठेकुआ लाकर उसे दे दिया। यद्यपि वह लेना नहीं चाहती थी, फिर भी माँ के आग्रह करने पर ले लिया, पर उसे खाया नहीं।

लेखक ने कहा — 'खाओ न ! यह षष्ठी देवी का प्रसाद है।'

रजिया की माँ जब वहाँ से चूड़ियों की खाँची लिये हुए उस कन्या के साथ दूसरों के घर जाने लगी, तब बाल्यावस्था के अल्हड़पनवश लेखक भी रजिया के पीछे-पीछे चले, मानो प्रेम की डोरी घसीटती हुई ले चल रही हो।

रजिया की माँ ने कहा—'बबुआजी, रजिया से ब्याह कीजिएगा' ? पुनः उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही रजिया से पूछी—

'क्यों रे रजिया, यह दुल्हा तुम्हें पसन्द है' ?

इतना सुनते ही लेखक सलज्ज होकर दूसरी ओर चले गये, परन्तु दो-चार दिनों पर कभी-न-कभी भेंट हो ही जाती थी। बड़े होने पर अध्ययन के लिए जब शहर जाना पड़ा, तब भी छुट्टियों में गाँव आने पर भेंट होती थी।

रजिया पढ़ी तो नहीं, परन्तु चतुर अवश्य हो गई। वह चूड़ियाँ पहनाने में अपनी माँ की अपेक्षा विशेष प्रतिष्ठित हो गई। वह ज्यों ही पता पाती, मिलने अवश्य आती और अजीब ढंग से प्रश्न करती—'देखिए तो, ये नवीन बालियाँ आपको पसन्द हैं ? क्या शहरों में ऐसी बालियाँ पहनी जाती हैं ? मेरी माँ शहर से चूड़ियाँ लाती है, मैंने कहा है, वह इस बार मुझे भी ले चलेगी। आप शहर में किस तरफ रहते हैं ? क्या भेंट हो सकेगी ?' रजिया की जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती गई, वैसे-वैसे उसमें नारीसुलभ संकोच भी बढ़ता गया। वह जब कभी बातें करतीं तो इधर-उधर देखती रहती कि कोई देख न ले, कोई सुन न ले। एक दिन वह इसी प्रकार बातें कर रही थीं कि भाभी ने सुन लिया और कहा कि 'देखना रजिया, बबुआजी को फुसला न लेना'।

उस दिन रजिया भाभी की ओर देखकर थोड़ा हँस तो दी, परन्तु उसके गालों पर लालिमा छा गई थी।

रजिया धीरे-धीरे किशोरावस्था पार कर तरुणाई को प्राप्त हुई। उसके सभी अंगों में विकास आ गया। जब किसी के घर वह चूड़ियाँ पहनाने जाती तो उसके रूप-लावण्य से सभी प्रभावित होकर उसकी ओर टकटकी लगा कर देखते और वह कभी-कभी व्यंग्य-विनोद भी कर देती।

चूड़िहारिनियों की एक विशेषता होती है—'बनाव-शृंगार, रूप-रंग, नाजी अदा, जो चूड़ी पहनने वालियों को मोह ले और उसके साथ ही वह दर्शकों को भी अपनी ओर खींचे'। यह सभी रजिया में विद्यमान था।

एक दिन की बात है कि रजिया के पीछे एक तरुण चूड़ियों की खाँची सिर पर लिये उसके पीछे-पीछे चल रहा था। वह उसका पति था, लेकिन अनजान बनकर पूछना पड़ा— 'इस मजूरे को कहाँ से उठा लाई है रे ?'

रजिया ने उत्तर दिया कि 'इसी से पूछिए, साथ लग गया तो क्या करूँ ?

पुनः रजिया ने मुस्करा कर कहा— 'यही मेरा खाविन्द है, मालिक है'। एक दिन ऐसा भी समय उपस्थित हुआ कि लेखक महोदय भी परिणयसूत्र में बँध गये। रजिया नई दुलहिन को चूड़ी पहनाने आई और आँगन में खूब धूम मचाई कि 'यह लूँगी, वह लूँगी। यदि मुँहमाँगी चीजें नहीं मिलीं तो वह (दुल्हा) लूँगी कि दुलहिन टापती रह जायेगी'।

उस समय भाभी ने मजाक में कहा— 'हट हट, बबुआ को ले जायेगी तो तुम्हारा हसन क्या करेगा' ?

रजिया ने कहा— 'बहुरिया, यह भी टापता रहेगा'।

ऐसी विनोद-वार्ता करती हुई रजिया अपने खाविन्द से लिपट कर कहने लगी— 'ओ राजा, कुछ दूसरा न समझना'। खाविन्द और रजिया दोनों हँसने लगे।

समय धीरे-धीरे व्यतीत होने लगा। लेखक महोदय पटना में एक अखबार के सम्पादक बने। एक दिन चौक में रजिया से भेंट हुई। उसने कहा— 'सलाम बाबू।' उसके साथ में उसका खाविन्द भी था। उसने उसे पान लाने के लिए कहकर बातें करना शुरू की— 'अब तो ऐसे गाँव हैं जहाँ के हिन्दू मुसलमानों के हाथ की चूड़ियाँ नहीं खरीदते। अब हिन्दू चूड़िहारिनें हैं, हिन्दू दरजी हैं, परन्तु मेरी रानी तो मेरे हाथ की ही चूड़ियाँ पहनती हैं'।

इसके पश्चात् रजिया ने कहा—'मालिक, आप का डेरा कहाँ है ? डरिये मत, मैं अकेले नहीं, खाविन्द के साथ आऊँगी'। समय बदला। एक दिन चुनाव के सिलसिले में नेता बनकर प्रचार हेतु रजिया के गाँव जाना पड़ा। जब उसे पता चला तब उसने अपनी पौत्री को मेरे निकट भेज कर अपने घर बुलवाया। उसे विश्वास नहीं था कि हवागाड़ी पर चलने वाला नेता अब उसके घर क्या करने आयेगा ? लेकिन जब उसे पता चला तो उसने अपनी बहुओं से कहा कि मेरे कपड़े बदलवा दो। मेरे मालिक से बहुत दिनों पर भेंट हो रही है। वह निकट आई और उसने कहा— 'मालिक सलाम'।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह संस्मरणात्मक निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से प्रशस्त निबन्ध है।

(८) बन्दी पिता का पत्र

पं० कमलापति त्रिपाठी द्वारा लिखित निबन्धों में 'बन्दी पिता का पत्र' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह पत्रात्मक निबन्ध है, जिन्होंने इसे नैनी सेण्ट्रल जेल से प्रिय लालजी को सम्बोधित करके लिखा है। इस निबन्ध में जेल का वातावरण तथा कैदियों के द्वारा मनाये गये त्योहारों में होली का वर्णन किया गया है।

आज जेल में होली का उत्सव मनाया जा रहा है, परन्तु इन कैदियों के जीवन में आनन्द, सुख और सन्तोष कहाँ ? जो पशुओं के समान पीसे जाते हैं, जो समाज से उपेक्षित हैं, जिनके लिए जगत् में सम्मानपूर्वक खड़े होने का स्थान नहीं, जिनका भविष्य अन्धकार में है और जिनमें बहुतों के जीवन के अनेक वर्ष यहीं समाधिस्थ हो गये—उनके लिए कहाँ होली ? कहाँ दीपावली ?

यहाँ ऐसे भी प्राणी हैं, जिनकी सारी जवानी इसी में कट गई, बुढ़ापा यहीं आ गया और मौत भी संभवतः यहीं आकर उन्हें मुक्त करेगी।

ऐसे लोगों की संख्या भी यहाँ बहुत है, जिन्हें यह भी पता नहीं है कि उनके घर की क्या दशा है ? अपने जिन बच्चों को वे छोड़ आये थे, वे अब कैसे हैं ? उनके घर वाले भी अब उन्हें भूल चुके हैं। वे यदि आज कहीं छूट कर घर जायें और अपने सौभाग्य से अपने बेटों से मिलें तथा अपनी बीबी के सामने खड़े हों तो शायद न बेटा अपने बाप को पहचानेगा और न बीबी अपने मियाँ को। इन कैदियों के हृदय के तार टूटे हुए हैं, फिर भी इनके हृदय में होली मनाने का उत्साह है। कोई नाच रहा है, कोई ढफली बजा रहा है, कोई गा रहा है, कोई अबीर लगा रहा है, कोई रंग छोड़ रहा है।

होली के साथ एक प्राचीन इतिहास है। यमुना के तट पर कुंजों के बीच व्रजनन्दन कृष्ण ने गोपियों के साथ होली खेली थी।

आज होली का त्योहार है। अतः तुम सभी बच्चों की याद आ रही है। घर पर सभी बच्चे मिल-जुल कर जो धूम मचाते थे, जो रंगबाजी और हल्ला-गुल्ला होता था, मैं यहाँ बैठे-बैठे याद कर रहा हूँ। तुम लोगों का उत्पात देख कर झुंझलाता था, उलझ पड़ता था, डाँट भी देता था। आज

इस होली के त्योहार पर इस जेल में बैठे-बैठे हृदय में टीस हो रही है। इसी को दूर करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

इसके पूर्व गाँधीजी के २१ दिनों के अनशन का समाचार सुन कर मन घबड़ा गया था। मैं सोचता था कि ब्रिटेन की निष्ठुर सरकार पर इसका कुछ भी प्रभाव क्यों न पड़ा? फिर भी मेरे मन में गाँधीजी की सत्य और अहिंसा, तपस्या और भगवान् में विश्वास की भावना को देखते हुए मुझे भी दृढ़ विश्वास था कि गाँधीजी अजेय महापुरुष हैं। अनशन के कारण उनका शरीर अवश्य कमजोर हो रहा है, परन्तु भारतवासियों का अगाध प्रेम उन्हें मृत्यु के गाल से बचा लेगा। अन्त में यही हुआ, अन्यथा पराधीन भारत उस समय अन्धकाराच्छन्न हो जाता।

मेरा मन अशान्त वातावरण से थोड़ा शान्त रहा और मैंने लेखनी-कागज लेकर यह पत्र लिखा। अब कुछ ही दिनों बाद दूसरा पत्र लिखूँगा।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि सभी दृष्टियों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(९) अकेलापन और पार्थक्य

श्रीगजानन माधव मुक्तिबोध द्वारा लिखित निबन्धों में 'अकेलापन और पार्थक्य' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह एक व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध है, जो डायरी से लिया गया है। लेखक स्वयं लिखता है कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि देशी-विदेशी साहित्य हाथ में आ जाय, जिसके द्वारा अपनी समस्याओं पर कुछ प्रकाश पड़े, कुछ राहत मिले, कोई मार्ग प्राप्त हो। सम्भव हो, उस लेखक के विचार मेरे काम के निकलें। तदर्थ मैं लायब्रेरियों में जाता हूँ, किताबें टटोलता रहता हूँ, कुछ पूरी पढ़ता हूँ, कुछ आधी पढ़कर वापिस कर देता हूँ। यह एक प्रकार का आत्मग्रस्त बोध है और इससे यह परिणाम निकलता है कि मेरी समस्याओं तथा मेरे स्वभाव के समान एक नहीं बल्कि अनेक व्यक्ति हैं।

मैं एक कलाकार हूँ, कविता लिखता हूँ। आज से दस वर्ष पूर्व यह कहा जाता था कि कलाकार हमेशा अकेला रहता है। इस पर मेरी टिप्पणी केवल इतनी ही है कि प्रत्येक आदमी कुछ सोचने-विचारने के लिए, मनोमन्थन के लिए एकान्त चाहता है, जिसमें वह अकेला हो, दूसरा कोई न हो। कलाकार का जीवन मनोमय होता है और चूँकि मैं भी कलाकार हूँ, अतः

मुझे भी एकान्त आवश्यक है। यह बिलकुल सत्य है कि अपने मनोमय जीवन में प्रत्येक व्यक्ति अकेला होता है, यह स्वभावसिद्ध है। अकेलापन और पार्थक्य में अन्तर है।

यह पार्थक्य एक अलगाव है। मेरे बहुत से मित्र भोपाल में, जबलपुर में, रायपुर में, दिल्ली में, इलाहाबाद में, बनारस में, बम्बई में, उज्जैन में, अजमेर में और न मालूम कितनी जगहों में हैं—यहाँ तक कि कुछ पाकिस्तान में भी हैं। मेरा अनुमान है कि मैं उन मित्रों के लिए जिस पार्थक्य का अनुभव करता हूँ, सम्भव है कि वे भी उसी का करते होंगे। —

वस्तुत: पार्थक्य को दूर करने के लिए सहानुभूतिपूर्ण गहरी मनुष्यता की आवश्यकता है, परन्तु वह मुझसे बहुत दूर है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि मैं अकेले कोने में बैठ कर कविता लिखते हुए अमूल्य समय का दुरुपयोग कर रहा हूँ और अपने बड़े-से-बड़े उत्तरदायित्व से दूर होता जा रहा हूँ। मैंने अपने बाल-बच्चों की ओर नहीं देखा। मैंने प्रेमपूर्वक बात करती हुई अपनी स्त्री को भी फटकार दिया कि 'मुझसे ज्यादा बातें न किया करो अन्यथा मैं अपमानित कर दूँगा।

वास्तव में मेरे ये विचार उचित नहीं हैं। मैं कभी-कभी यह भी सोचता रहा कि दुनिया बड़ी विचित्र है, अपनी धुन के पीछे कितने बरबाद हो गये। उस धुन ने न उन्हें कुछ दियो, न उस धुन से कुछ भला हुआ।

तात्पर्य यह है कि पार्थक्य का भाव केवल मेरी ओर से नहीं, बल्कि सभी की ओर से है।

विद्वान् लेखक ने इस निबन्ध में अकेलापन और पार्थक्य का सुन्दर वर्णन किया है। यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(१०) निज भाषा उन्नति अहै···

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'निज भाषा उन्नति अहै···' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। इस निबन्ध का शीर्षक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित एक दोहे की पंक्ति है, जिसका पूर्णरूप निम्नांकित है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह कथन सर्वथा सत्य है। यदि हम अपने अतीत की ओर दृष्टिपात करें, तो यह स्पष्ट दृष्टिगत होगा कि भारत की उन्नति का कारण एकमात्र अपनी भाषा थी, चाहे वह अमरभारती हो, चाहे संस्कृत हो, चाहे प्राकृत संस्कृत हो, चाहे अपभ्रंश हो। भाषा की उन्नति के साथ-साथ देश, जाति तथा समाज की भी उन्नति थी। ज्यों-ज्यों भाषा का उत्थान हुआ त्यों-त्यों अवनत समाज भी उत्थित हुआ। यह केवल देश की ही बात नहीं है, विदेश की भी बात है। जिनके पास भाषा नहीं उनके पास सभ्यता नहीं, जिनके पास भाषा है उनके पास सभ्यता भी है, संस्कृति भी है।

भाषा वह वरदान है जो केवल मनुष्य को मिला है, जिससे उनकी सभ्यता-संस्कृति पल्लवित होती है। पशुओं की कोई भाषा नहीं, अतः उनकी कोई सभ्यता-संस्कृति नहीं। मनुष्यों को भाषा का यह वरदान उन्हें आगे बढ़ने के लिए, ज्ञानार्जन के लिए मिला है। अपनी संस्कृति समझने तथा उसे अपनाने के लिए मिला है। मनुष्य के पूर्वजों ने अपने पीछे की पीढ़ियों के लिए जो कमाई या शास्त्रादि निर्माण कर दिया है, वे अपनी बपौती समझ कर उसका उपभोग कर रहे हैं। पशुओं के लिए यह असम्भव है, उनकी कुछ भी बपौती नहीं है।

मनुष्य के पास भाषा है, ज्ञान है, पशुओं के पास भाषा नहीं, ज्ञान नहीं। भाषा तथा उसके ज्ञान के कारण ही मनुष्य का विकास हुआ, उसकी सभ्यता-संस्कृति तथा सामाजिकता में वृद्धि हुई। भारत ज्ञान-गुरु होने के कारण इसकी भाषा प्राचीन है। प्रारम्भ में भाषा वेद, पुराण, स्मृति आदि के रूप में विकसित हुई। पहले सुनकर, बाद में स्मरण कर, तत्पश्चात् लिखकर प्राचीन संस्कृत-वाङ्मय का प्रचार-प्रसार हुआ।

भारत में अपनी भाषा थी, अपना राज्य था। दैव-दुर्विपाक से अपना राज्य न रहा, पर भाषा अपनी रही। अपना राज्य न रहने के कारण राज-भाषा कुछ समय के अनन्तर बदल गई। यद्यपि सम्प्रति भारत स्वतंत्र है, फिर भी प्रतंत्र के समान है। विदेशी अंकुश हट गया, फिर भी विदेशी भाषा कायम है; यह भारत के लिए शूल है। यह ऐसा शूल है जो निज भाषा का ज्ञान हुए विना हृदय में चुभता रहेगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दूरदर्शी थे। उन्होंने हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित करने का खूब प्रयत्न किया। यद्यपि इनके पूर्व हिन्दी थी, परन्तु उसका व्यवहार अधिक नहीं होता था। इन्होंने हिन्दी

भाषा के व्यवहार पर बल दिया। अतः समीक्षकों ने इन्हें हिन्दी के जन्मदाता पद पर प्रतिष्ठित किया, परन्तु स्वल्पायु में ही ये काल-कवलित हो गये। तत्पश्चात् इनके द्वारा श्रीगणेश किये गये। हिन्दी के गौरव को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सँभाला, पर इनके पश्चात् कुछ ऐसे भी लेखक हुए जो अंग्रेजी भाषा से पूर्णतः प्रभावित थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे हिन्दी भाषा में अंग्रेजी का उपयोग करने लगें। आज अपनी भाषा, अपनी संस्कृति को पहचानने का समय है। इसी से सभी की उन्नति है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टिकोणों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(११) सदाचार का तावीज

श्रीहरिशंकर परसाई द्वारा लिखित निबन्धों में 'सदाचार का तावीज' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। एक राज्य में बहुत हल्ला मचा कि राज्य में भ्रष्टाचार बहुत फैल गया है। जब राजा के कानों में यह बात आयी, तब उन्होंने दरबारियों से पूछा कि 'प्रजा बहुत हल्ला मचा रही है कि राज्य में भ्रष्टाचार फैला हुआ है, परन्तु मुझे तो वह दिखायी नहीं देता। यदि तुम लोगों ने उसे देखा है तो मुझे बताओ'।

दरबारियों ने कहा—'महाराज, जब आपको नहीं दिखायी देता है तब हमलोगों को वह कैसे दिखायी देगा?'

राजा ने कहा कि 'ऐसी बात नहीं है। कभी-कभी कोई चीज मुझे नहीं दिखायी देती, पर तुम्हें वह दिखायी दे देती है। तुम सभी राज्य में घूम-घूम कर भ्रष्टाचार का पता लगाओ और यदि कहीं वह मिल जाय तो उसका नमूना ले आओ। मैं भी देखूं कि वह कैसा है।

एक दरबारी ने कहा कि 'महाराज, मैंने सुना है कि वह बहुत सूक्ष्म होता है। अतः वह हमलोंगों को दिखायी नहीं देगा। एतदर्थ आप कुछ विशेषज्ञों को नियुक्त करें, जो उसका पता लगा सकें'। राजा को दरबारी की बात पसन्द आ गयी और उन्होंने पाँच विशेषज्ञों को बुलाया और भ्रष्टाचार के पता लगाने का कार्य सौंप दिया। उन्होंने राज्य में घूम-घूम कर पता लगाया

और राजा से निवेदन किया कि 'राजन् ! भ्रष्टाचार का पता लग गया। वह आपके राज्य में सर्वत्र है, वह इस भवन में भी है, वह आपके इस सिंहासन में भी है। वह मुख्यत: घूस के रूप में फैला हुआ है। गत मास में आपके सिंहासन में रंग लगाने का कार्य हुआ, परन्तु इसके बिल का भुगतान दुगुने रूप में किया गया। इसका आधा पैसा बीच वाले खा गये।

राजा ने कहा कि 'मैं तो भ्रष्टाचार मिटाना चाहता हूँ। तुम सभी मिलकर इसे दूर करने की योजना तैयार करो'।

विशेषज्ञों ने राजा को आश्वासन दिया और वे वहाँ से चले गये। दरबारियों में घबड़ाहट हो गयी कि कहीं हमलोग पकड़ में न आ जायँ। उन्होंने कहा कि राजन् ! हमलोगों ने कन्दरा में रहने वाले एक साधु का पता लगाया है। वे एक ऐसा तावीज निर्माण करते हैं कि जो उस तावीज को बाँह में धारण करता है, वह सदाचारी हो जाता है। उस तावीज का नाम सदाचार का तावीज है। दरबारियों की बात सुनकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि 'उस साधु को दरबार में उपस्थित करो'।

दरबारियों ने ऐसा ही किया, तब राजा ने उस साधु से तावीज के विषय में पूछा—'साधु, इस तावीज से मनुष्य कैसे सदाचारी हो जाता है?

साधु ने कहा—'महाराज, भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्य की आत्मा में होता है, बाहर से नहीं होता। विधाता जब मनुष्य को बनाता है तब किसी की आत्मा में ईमान की कल फिट कर देता है और किसी की आत्मा में बेईमानी की। मैंने एक ऐसी तावीज तैयार की है, जिससे मनुष्य सदाचारी बन जाता है। मैंने इस तावीज का प्रयोग कुत्ते के गले में बाँध कर किया है। वह भी इसके प्रभाव से सदाचारी बन गया, रोटी चुराने का काम छोड़ दिया। इसे धारण करने से आपके राज्य के सभी पुरुष सदाचारी बन जायेंगे।

राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपने राज्य में 'सदाचार के तावीज' का कारखाना खोलवा दिया। दरबारियों ने अपनी बाँह में उस तावीज को धारण किया और ईमानदारी के साथ कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन राजा अपना वेश बदल कर एक कर्मचारी के कक्ष में गये और अपना काम कराने लिए उसे पाँच रुपये का नोट देने लगे।

कर्मचारी ने उन्हें डाँटकर कहा—'भाग जाओ यहाँ से, घूस लेना पाप है'।

राजा मन-ही-मन प्रसन्न हुए, क्योंकि तावीज के कारण कर्मचारी ईमानदा वन गया था।

कुछ दिनों के वाद राजा फिर वेष बदल कर उसी कर्मचारी के कक्ष मे गये। उस दिन महीने की आखिरी तारीख थी। राजा ने पहले के समान ही पाँच रुपये देकर काम कराना चाहा। बड़ी प्रसन्नता के साथ उस कर्मचारी ने रुपये लेकर अपने पाकिट में रख लिया।

राजा ने आश्चर्यपूर्वक कहा—'मैं तुम्हारा राजा हूँ। क्या आज तु सदाचार का तावीज वाँधकर नहीं आये हो ?

कर्मचारी ने कहा—'वांधकर आया हूँ सरकार'।

राजा ने कहा—'तव ऐसा क्यों हो गया ?'

उन्होंने तावीज पर कान लगाकर सुना। तावीज में से स्वर निकल रह था—'अरे आज महीने का अन्तिम दिन एकतीस तारीख है। आज तो ले लो'

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निवन्ध भाषा, भाव तथा शैली आ समस्त दृष्टियों से एक उत्तम निवन्ध है।

प्रमुख स्थलों का विशदीकरण

(अथवा)

प्रमुख स्थलों का भाव-पल्लवन

(१) जो सिद्ध कवि हैं, वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें, उनका पद्य अच्छा ही होता है, परन्तु सामान्य कवियों के विषय के अनुकूल छन्दयोजन करनी चाहिए।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने कवि-कर्त्त के ऊपर प्रकाश डाला है। कवि दो प्रकार के होते हैं—विशिष्ट कवि, सामान् कवि। विशिष्ट कवि सिद्ध कवि के नाम से अलंकृत होते हैं। उनकी कविता किसी भी छन्द में हों, उनका पद्य अच्छा ही होता है। परन्तु सामान् कवि साधारण कवि के रूप में होते हैं। वे सभी प्रकार के छन्दों में कविता लिखने में समर्थ नहीं होते। अतः उनके लिए यह परमावश्यक है कि वे विषय

नुकूल छन्द का प्रयोग करें। अब दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त आदि छन्दों में बहुत कविताएँ हो चुकी हैं। अत: विशिष्ट कवियों से यह अपेक्षा है कि वे संस्कृत के द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों में कविताएँ लिखकर हिन्दी कविताओं की शोभा बढ़ायें।

(२) कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी सावधानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है।

भाव-पल्लवन — प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने कवि-कर्त्तव्य पर प्रकाश डाला है। कविता की रचना करते समय कवि को बड़ी ही सावधानी, मनोयोग एवं निपुणता की आवश्यकता है, क्योंकि कविता एक अपूर्व रसायन औषधि के समान है; उसमें रस की सिद्धि होती है। रस ही कविता की आत्मा है। यदि कविता में भाव की झलक नहीं आयी तो कविता नीरस एवं उपहासास्पद हो जाती है। अत: कविता निर्माण करते समय आचार्य भरत के सूत्र की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए — 'भावविभावानुभावव्यभिचारिभावयोगात् रसनिष्पत्तिः'। अर्थात् भाव, विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारीभाव के योग से रस की सिद्धि होती है।

(३) अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने कवि-कर्त्तव्य के ऊपर प्रकाश डाला है। कवि को कविता लिखते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कविता सार्थक हो, उसके अर्थ में सरसता हो, पाठक को कविता पढ़ते समय अर्थगम्य हो; अर्थ समझने में कोई कठिनाई न हो। कविता सरल के साथ-साथ सरस भी हो। क्लिष्ट अलंकारों से युक्त न हो, साधारण प्रसिद्ध अलंकार हों, जिससे कविता का भाव हृदयंगम हो सके। अर्थ की सरसता ही कविता को जीवित रखने वाला प्राण है। अत: कविता निर्मित करते समय उसके विषय से कवि तादात्म्य स्थापित करके लेखनी उठावे और तन्मय होकर कविता करे। वह कविता उच्च कोटि की होगी।

(४) कवि की कल्पनाशक्ति तीव्र होती है।

भाव-पल्लवन—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने कवि-कर्त्तव्य के ऊपर प्रकाश डाला है। कवि में एक अद्भुत शक्ति होती है, जिसे कल्पना-शक्ति कहते हैं। यह शक्ति इतनी तीव्र होती है जहाँ भगवान् सूर्य भी नहीं पहुँचते, वहाँ कवि पहुँच जाते हैं—

जहाँ न पहुँचे रवी।
तहाँ पहुँचे कवी।।

कवि अपनी कविताओं में कल्पना का आश्रय लेकर ऐसी सुन्दर-सुन्दर बातों का वर्णन करते हैं जिन्हें पढ़कर हमें ऐसा मालूम होता है, मानो वह चित्रण हमारे सामने हो। हमारे सामने ताजमहल का चित्र खिच जाता है, हम हिमालय की चोटियों का आनन्द लेने लगते हैं।

(५) ईर्ष्या सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने ईर्ष्या के ऊपर प्रकाश डाला है। सामाजिक जीवन में अपने से दूसरों को विकसित देखकर लोग उसके प्रति ईर्ष्या करते हैं। यद्यपि वह व्यक्ति कोई हानि नहीं पहुँचाता, फिर भी लोग उससे व्यर्थ की ईर्ष्या करके स्वयं दुःखी होते हैं और उसे किसी-न-किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की चिन्ता में दिन-रात जला करते हैं। इसमें ईर्ष्यालु व्यक्ति की ही हानि होती है, उस व्यक्ति की नहीं। अतः ईर्ष्या जीवन को नष्ट करने वाले विष के समान है, जो शरीर क्षीण कर देती है तथा सुख से वञ्चित कर देती है।

(६) ईर्ष्या अत्यन्त लज्जावती वृत्ति है।

भाव-पल्लवन—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने ईर्ष्या के ऊपर प्रकाश डाला है। ईर्ष्या का स्वभाव लज्जाशील युवती के समान है, जो अपने मुख को दूसरों के सामने घूंघट के ओट में छिपाये रहती है। वह अपने स्वामी के सामने भी मुख खोलकर नहीं आती। जो व्यक्ति ईर्ष्यालु होता है, वह हरम की बेगमों से भी अधिक पर्दा करता है। वह समाज के सामने स्पष्ट रूप से नहीं आता। ईर्ष्या का यही भाव है। क्रोधी व्यक्ति पहचाना जाता है, कारु-णिक व्यक्ति पहचाना जाता है, परन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति को पहचानना बड़ा कठिन है। ऐसे व्यक्ति का यही लक्षण है कि कभी असावधानी से उसके मुख से 'आह' की ठंडी साँस निकल जाती है।

(७) संस्कृति मानव-चेतना का ऐसा विकास क्रम है, जो उसके अन्तरंग तथा बहिरंग की परिष्कृति करके विशेष जीवन-पद्धति का सृजन करती है।

विशदीकरण—प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर भारतीय संस्कृति के सुन्दर रूप के ऊपर प्रकाश डाला गया है। ये विदुषी लेखिका श्रीमती महादेवी व

की पंक्तियाँ है। संस्कृति को अपनाने से मानव-चेतना का विकास होता है। संस्कृति से अन्तरंग हृदय तो शुद्ध होता ही है, बहिरंग वेषभूषा, आहार-व्यवहार भी शुद्ध हो जाता है। इसके कारण मनुष्य की जीवन-पद्धति में विशेष चमत्कार आ जाता है। संस्कृति मनुष्य को दानव बनाने से बचाकर उसे वास्तविक अर्थ में मानव बना देती है।

(८) गृह के दो घटक हैं, नारी और पुरुष, इसी से उन्हें दम्पति कहा गया है।

भाव-पल्लवन—प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर भारतीय संस्कृति के गौरव पर प्रकाश डाला गया है। ये विदुषी लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा की पंक्तियाँ हैं। गृहस्थी का निर्माण स्त्री-पुरुष के सम्मिलित जीवन से होता है। यही कारण है कि इन्हें दम्पति कहकर पुकारा जाता है। सामाजिक वातावरण में इन दोनों का महत्त्व है। पुरुष गृह के बाह्य वातावरण में प्रवेश कर उपयोगी वस्तुओं का संकलन करता है और नारी गृह के भीतरी वातावरण में रहकर उन वस्तुओं का यथोचित उपयोग के लिए प्रयत्न करती है। बिना गृहिणी के गृह नहीं, गृह की शोभा नहीं। अतः गृहस्थी का सच्चा सुख दाम्पत्य जीवन है। पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

(९) भाषा वह वरदान है जो मनुष्य को मिला है।

विशदीकरण—प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर विद्वान् लेखक ने भाषा के ऊपर प्रकाश डाला है। भाषा भगवान् से प्राप्त एक वरदान है, जो मनुष्यों को प्राप्त है। पशुओं और पक्षियों की भाषा नहीं, क्योंकि भाषा का तात्पर्य है—सभ्यता और संस्कृति अपनाना। मनुष्य भाषा के द्वारा अपने पूर्वजों की परम्परा-प्राप्त सभ्यता और संस्कृति को अपनाकर अपना जीवन सार्थक बनाता है, परन्तु पशुओं के पास सभ्यता-संस्कृति कुछ नहीं है, जो उन्हें भाषा से मिली है। अतः उनकी भाषा नाम की कोई वस्तु नहीं, जो उन्हें विकसित कर सके।

(१०) भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्य की आत्मा में होता है। बाहर से नहीं होता।

भाव-पल्लवन—प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर विद्वान् लेखक ने भ्रष्टाचार तथा सदाचार के ऊपर प्रकाश डाला है। इन दोनों का निवासस्थान मनुष्य की आत्मा है। ब्रह्मा जिस समय मनुष्य का निर्माण करते हैं, उस समय वे

किसी की आत्मा में ईमान की मशीन फिट कर देते हैं और किसी की आत्मा में बेईमानी की मशीन बैठा देते हैं। उसी से एक स्वर निकलता है और मनुष्य उसी स्वर के अनुसार सदाचारी तथा दुराचारी बनकर संसार में प्रवृत्त होता है। अतः सदाचार एवं दुराचार ये दोनों आत्मा की देन हैं।

प्रमुख स्थलों का संक्षेपीकरण

(१) गद्य और पद्य··· ···विषय में है।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर विद्वान् लेखक का कथन है कि पद्य में तो कविता का आनन्द आता ही है, गद्य में भी कविता का-सा आनन्द आता है। पद्य और गद्य दोनों काव्य के नाम से पुकारे जाते हैं। दोनों में केवल इतना ही अन्तर है कि पद्य कुछ नियमों से बद्ध रहता है और गद्य के साथ कोई बन्धन का नियम नहीं है।

(२) जो सिद्ध कवि··· ···दर्शित होती है।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने दो प्रकार के कवियों का वर्णन किया है—विशिष्ट कवि तथा साधारण कवि। विशिष्ट कवियों की कविताएँ किसी भी छन्द में अच्छी होती है, परन्तु साधारण कवियों को कविता के लिए विषय के अनुरूप छन्द का चयन करना पड़ता है, अन्यथा उनकी कविताएँ उपहासास्पद बन जाती हैं।

(३) कवि को ऐसी भाषा··· ···वाञ्छनीय है।

संक्षेपीकरण—विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर कविता की भाषा पर प्रकाश डाला है। कविता की ऐसी सरल भाषा होनी चाहिए जिसका अर्थ पाठक को सरलता के साथ समझ में आ जाय। कवि का कर्त्तव्य है कि सरल भाषा में कविता लिखे, उसमें क्लिष्ट अलंकारों का प्रयोग करके उसे कठिन न बनावे।

(४) अर्थ-सौरस्य ही··· ···देख रहा है।

संक्षेपीकरण—विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर कविता के अर्थ चमत्कार पर प्रकाश डाला है। अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। जिस

कविता के अर्थ में, भाव में कोई चमत्कृति नहीं, वह सर्वोच्च कविता नहीं कही जा सकती। यदि कवि विषयानुरूप तल्लीन होकर कविता करे तो उसमें भाव-सौन्दर्य अवश्य आयेगा।

(५) संसार में ईश्वर··· ····बहुत पड़ता है।

संक्षेपीकरण—विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत पंक्तियों में कवियों को ईश्वर या देवता के समान अवतार माना है, क्योंकि इनमें अलौकिक कार्य करने की क्षमता रहती है। ये नवीन सृष्टि करते हैं। केवल कवि ही नहीं, लेखक भी इस श्रेणी में आते हैं। ये दोनों अपनी रचना से जन-जीवन को मोहित करते हैं, प्रभावित करते हैं।

(६) यह बात ध्यान···· ···ईर्ष्या नहीं होगी।

संक्षेपीकरण—विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत पंक्तियों में ईर्ष्या पर प्रकाश डाला है। यह एक मनोवृत्ति है, जो अपने पड़ोसी या नित्य सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति की वृद्धि या विकास देखकर होती है। किसी दूर देश में रहने वाले अपने से धनी व्यक्ति के बारे में सुनकर या जानकर ईर्ष्या नहीं होती।

(७) ईर्ष्या अत्यन्त··· ···निकल जाय।

संक्षेपीकरण—विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत अवतरण में ईर्ष्या का वर्णन किया है। यह एक सलज्ज नारी के समान लज्जा करने वाली मनोवृत्ति है। यह समाज के सामने कभी प्रकट रूप में नहीं आती और अपने धारणकर्त्ता ईर्ष्यालु व्यक्ति के सामने भी प्रकट नहीं होती। हाँ, कभी असावधानी के कारण ठंडी साँस के साथ 'आह' के रूप में आभासित हो जाती है।

(८) भारतीय संस्कृति का··· ···इतिहास से नहीं।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत पंक्तियों की लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा हैं। विदुषी लेखिका ने इन पंक्तियों में भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डाला है। भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत वेद हैं, जो आज भी हमें अपनी ज्योति से प्रकाशित कर रहा है। जिस प्रकार भगवान् सूर्य की किरणें सहस्रों कोश दूरी से आकर हमें आलोकित करती हैं, उसी प्रकार इतनी पुरानी संस्कृति आज भी हमें ज्ञान का प्रकाश दे रही है। इतिहास में हमें घटनाएँ मिलती हैं और संस्कृति में हमें संस्कार प्राप्त होते हैं।

(९) भाषा वह वरदान··· ···जाँगर अपना पेट।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत पंक्तियों के भीतर विद्वान् लेखक ने भाषा के ऊपर प्रकाश डाला है। भाषा ईश्वरप्रदत्त एक वरदान है, जो केवल मनुष्यों को प्राप्त है। पशु-पक्षियों को यह वरदान नहीं मिला है। भाषा से मनुष्य आगे बढ़ता है, ज्ञान को बढ़ाता है, परन्तु पशुपक्षियों को यह सम्भव नहीं है। यदि भाषा ईश्वरीय वरदान बनकर मनुष्यों को नहीं मिलती तो वे अपने पूर्वजों—ऋषियों द्वारा प्रणीत शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने से वञ्चित हो जाते।

(१०) भ्रष्टाचार··· ···काम करता है।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने भ्रष्टाचार तथा सदाचार का विवेचन किया है। लेखक का कथन है कि मनुष्य की आत्मा में ही भ्रष्टाचार तथा सदाचार का निवास है। भगवान् जब मनुष्यों का निर्माण करते हैं, तब उसी समय उनकी आत्मा में भ्रष्टाचार अथवा सदाचार का कल फिट कर देते हैं। इसी कल की प्रेरणा से मनुष्य भ्रष्टाचारी तथा सदाचारी बन जाता है।

बीजू तथा कलमी—दोनों प्रकार के आम के वृक्ष होते हैं। फलों में रस के कारण इन्हें रसाल भी कहते हैं। आम के फलों में लङ्गड़ा, दसहरी, ठाकुर-भोग आदि विशेष सरस होते हैं। आम के पेड़ बने रहें, ठूंठ होकर भी बने रहें। वे प्रत्येक कार्यों में काम में आते हैं। हरे-भरे आम के पत्ते मांगलिक कार्यों में तोरण बनाने के कार्य में, मंगल-कलश में पञ्चपल्लव के काम में, इसकी सूखी लकड़ियाँ हवन के कार्य में तथा ईन्धन के काम में आती हैं।

आम के फल टिकोरा से लेकर पक जाने तक सदैव उपयोग में आते हैं। आम के टिकोरे या कच्चे आम की चटनी बनती है, जो बहुत ही स्वादिष्ट होती है। जब कोई व्यक्ति भाँग खाकर या पीकर नशे में चूर हो जाता है, तो उसके नशे को दूर करने के लिए उसे आम की खटाई दी जाती है।

कच्चा आम बड़े काम का है। अतः उसकी सुरक्षा बड़ी आवश्यक है, पर शैतान लड़कें इस पर ढेलेबाजी करते हैं, कुछ बड़े लोग भी इसे तोड़ कर गिराते हैं। एक पूर्वी रागिनी की गीत है, जिसमें कितनी सरसता है—

'काँची अमिया न तुरिहऽबलम काँची अमिया।
मोरे टिकोरवा न रसवा पगल हो॥
हियरा में गँठुली न अब ले जगल हो।
काँची अमिया न तुरिहऽबलम काँची अमिया'॥

कच्चे आमों की खटाई तो प्रसिद्ध ही है, इसके मुरब्बे भी बनाये जाते हैं, जो बड़े ही स्वादिष्ट होते हैं। कच्चे आमों का उपयोग और भी अनेक रूपों में किया जाता है। इन आमों का पन्ना भी बनता है, जो पीने में आनन्द देता है और लू लगने से बचाता है।

जब कच्चे आमों में इतना गुण है तो पके आमों का क्या कहना? आम पकते ही इसके रस के पारखी शुक तथा वानर उसके फलों के निकट पहुँच जाते हैं। आबाल वृद्ध नर-नारी उसके रस लेने को लालायित हो जाते हैं। रस की अमावट तैयार होने लगती है। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है।

वास्तव में आम का टिकोरा वसन्त की सफलता है। यह नवीन वर्ष का उदय है और मधुमास का चरम उत्कर्ष। इसमें नवलक्ष्मी की परि-पूर्णता होने के साथ नूतनता का अभिनन्दन है, पर इसलिए यह निहारने की

वस्तु है, हथियाने की नहीं। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से एक प्रशस्त निबन्ध है।

(३) कदम की फूली डालें

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'कदम की फूली डालें' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने कदम्ब की विशेषता पर प्रकाश डाला है। गुलाब के लिए क्यारी चाहिए, कमल के लिए सुरक्षित निर्मल जलयुक्त सरोवर चाहिए, परन्तु कदम्ब के लिए केवल पृथ्वी की विशाल गोद में दो अंगुल जगह चाहिए, जहाँ से इसका बीज बाहर निकल कर अंकुरित तथा पुष्पित हो सके। अन्य पुष्पों के लिए सुरक्षा के लिए अनेकानेक प्रयत्न किये जाते हैं, परन्तु इसके लिए न किसी माली की आवश्यकता है, न किसी शिल्पी की। यह स्वतः विकसित होता चला जाता है। यह एक साथ ही फूलता भी है, फलता भी है। इसके फूल ही इसके फल हैं। फूल में शतमुखी विकास है; गन्ध है, केशर है और साथ ही फल की मिठास भी है।

कुछ पुष्प ऐसे भी हैं जो क्यारियों तथा गमलों में लगाये जाते हैं, जो शोभा के हेतु हैं, पर वे समयानुसार मुरझाते रहते हैं, जिससे शोभा फीकी हो जाती है; परन्तु कदम्ब की सभी पुष्पों से विशिष्टता है। यह वह वृक्ष है जिसके नीचे खड़े होकर ग्वाल-बालों के बीच बालक नन्दनन्दन कृष्ण ने अपनी मोहिनी बाँसुरी बजाई थी—

नन्द क नन्दन कदम्ब के तरु तर
धीरे-धीरे मुरली बजाउ।

यह वह वृक्ष है, जहाँ कालिन्दी (यमुना) जी प्रवाहित हैं। इसी वृक्ष पर चढ़कर नन्दनन्दन कृष्ण उनके जल में कूद कर कालिय नाग के सिर पर नृत्य किये थे।

यह वही वृक्ष है, जिसके निकट शरद् की पूर्णिमा के दिन नन्दनन्दन कृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला की थी। यह वही वृक्ष है, जिसके निकट गोवर्धन की पूजा करा कर नन्दनन्दन कृष्ण ने मूसलाधार जलवृष्टि करते हुए देवेन्द्र का मानमर्दन इसी पर्वत को छत्र बनाकर किया था। यह वही वृक्ष है, जिसके निकट गोचारण करते हुए नन्दनन्दन कृष्ण ने ब्रह्मा का

मान भंग किया था। आज भी कदम्ब का महत्त्व है। कदम्ब वही है और उस कदम्ब के फूल के साथ-साथ लोकमंगल का राग भी वही है। कदम्ब का पेड़ पुराना होकर भी पुराना नहीं हुआ, क्योंकि उसकी जड़ें पथरा गई हैं, उसकी छाल रूक्षतर हो गई है, उसके तन में कितने कोटर बन गये हैं, पर उसके फूल में वही ताजगी है, इसलिए वह नया है।

संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों ने इस कदम्ब तथा इसके फूलों का वर्णन किया है। यह लोकमंगल का साधन है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ इसके पराग से अपना श्रृंगार करती हैं। कदम्ब का फूल पद-नख की ज्योति नहीं, कर-कमलों का लीलाकमल नहीं, कानों का शिरीष नहीं, नासिका का लवंग नहीं, अपितु यह सीमन्त भरने वाला सौभाग्य का श्रृंगार है। कदम्ब को सौन्दर्य का मोह नहीं, बल्कि उसे लोकमंगल करने की ममता है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टियों से उत्तम निबन्ध है।

(४) हरसिंगार

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'हरसिंगार' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। इस निबन्ध के भीतर विद्वान् लेखक ने 'हर-सिंगार' नाम पुष्प का वर्णन किया है, जो भगवान् शिव का श्रृंगार है। बरसात के अन्तिम दिनों में यह रात्रि के अन्तिम प्रहर में फूलता है। एक प्रेयसी अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई जब बहुत समय व्यतीत होने लगा और प्रिय का दर्शन नहीं हुआ तब अपनी सखी से कहती है कि 'सखि, मेरे प्रिय कहीं रुकते नहीं, पर बात ऐसी आ पड़ी है कि वे मेरी चिन्ता में वीणा में एकाग्रता न ला सके होंगे। इसलिए बीन की होड़ में उस नागरी से हार गये होंगे और शायद हारने पर शर्त रही होगी—रातभर वहीं संगीत जमाने की। इसी से वे बिलम गये, नहीं तों सोचो भला, चाँद बीच आकाश में आ गया और हरसिंगार के फूल ढुरने लगे, इतनी देर वे कभी लगाते ?—

> 'सखि, स विजितो वीणावाद्यैः कयाप्यपरस्त्रिया।
> पणितमभवत्ताभ्यां तत्र क्षपालितं ध्रुवम्॥
> कथमितरथा शेफालीषु स्खलत्कुसुमास्वपि।
> प्रसरति नभो मध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते'॥

हरसिंगार बरसात के उत्तरार्द्ध का पुष्प है। जब बादल मघा औ पूर्वा नक्षत्र में बरसने लगते हैं, उस समय यह भी रात्रि की अन्तिम बेला फूलों की झड़ी लगा देता है और सवेरा होते-होते बरस कर शान्त हो जा है। इस वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर केवल फूल ही फूल दिखाई देता है, उनमें झीनी गन्ध भी निकलती है। बादल झड़ी के साथ-साथ गरजता भी है, बिज भी नृत्य करती है, पर हरसिंगार बिना साज-बाज के पुष्प की झड़ी कर है। वह इतना बरसता है कि अपना सर्वस्व लुटा देता है, अपने लिए एक पुष्प अवशेष नहीं रखता। इसका रंग बड़ा ही सुन्दर होता है, चटकी होता है। हरसिंगार सात्त्विक प्रेम की असली पहचान है। यह सर्वस्व लुटा जानता है, उसके बदले में कुछ लेना नहीं जानता। इसके मन में किसी भी प्रका की कामना नहीं रहती।

धैर्य ही हरसिंगार के जीवन का सम्बल है। इसका सम्बन्ध शृंगार भी है और मृत्यु से भी है। इन दोनों में सादृश्य है, तभी तो शृंगार औ मृत्यु दोनों में बारात चलती है और बाजा बजता है। प्रेम स्वयं मृत्यु है काम की दश दशाओं में 'मृति' का अन्तिम दशा के रूप में वर्णन है। ह सिंगार स्वयं ही अपना पुष्प पृथ्वी पर बिखेरता है, उसे झहराने की आवश्य कता नहीं पड़ती। उसे झहरा कर फूल गिराना गँवारपन है। एतदर्थ 'गा सत्तसई' में एक श्लोक है, जिसका भाव निम्नांकित है—

'हे गँवार हलवाहिन, हरसिंगार के गिरे हुए फूलों को ही चुनो, इस डाल को मत झहराओ। झहराने से वह फूल न देगा, बल्कि डाल झहरा समय जो तुम्हारी चूड़ियाँ खनकेगी, उसकी भनक तुम्हारे ससुर के कान पड़ जायेगी। हरसिंगार ऐसे देवता का शृंगार है, जो मृत्युञ्जय है, जिस रूप है, नाम है, मूर्त है, वह अरूप, अनाम तथा अमूर्त नहीं है। अतः ह सिंगार का उपयोग केवल हर (शिव)-सिंगार (शोभा) में ही है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आ समस्त दृष्टियों से उत्तम निबन्ध है।

(५) छितवन की छाँह

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'छितवन की छाँ नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखिय यह व्यक्ति

निष्ठ निबन्ध है। विद्वान् लेखक का छितवन की छाँह से घनिष्ठ परिचय है। लेखक का कथन है कि छितवन गन्ध साधना का नन्दनवन है। छितवन में चम्पा के रूप का ज्वार नहीं, कुमुद का स्निग्ध शीतल स्पर्श नहीं, कमल का अलिगुञ्जन नहीं, कदम्ब का मधुर रस नहीं, परन्तु छितवन का सौन्दर्य उसकी गन्ध है, शुद्ध एवं आकर्षित करने वाली गन्ध। यही कारण है कि इसकी छाया में भुजंग भी आते हैं, परन्तु वे निर्विष होकर विश्राम करते हैं।

छितवन की छाँह में अतृप्ति में तृप्ति है, अरति में रति है, परन्तु सबसे बड़ी बात है, सुगन्धि। अन्य पुष्पों पर लोक का ध्यान गया, कवियों ने वर्णन किया, लेकिन यह उपेक्षित रह गया।

लोक तथा कवियों ने कमल में सौन्दर्य, चम्पा में गुण, बन्धूक में रंग, शेफाली में अनुराग, कुमुदिनी में कोमलता, गुलाब में सुगन्धि, काश में हास, हर्सिंगार में त्याग और दानशीलता आदि का रूप देखा तथा वर्णन भी किया, परन्तु उनका ध्यान छितवन की छाँह की ओर आकृष्ट नहीं हुआ। छितवन भी गन्ध तथा छाया के लिए प्रसिद्ध होना चाहिए, परन्तु उसे सम्मान नहीं मिला। छितवन दो मासों में अपनी छाया के लिए प्रसिद्ध है—मधुमास तथा आश्विन।

छितवन की छाया से मेरा परिचय तीन बार हुआ। मुझे याद है कि मधुमास की सन्ध्या थी। मैं अपने दो मित्रों के साथ घूमने निकला था। रास्ते में एक बगीचा पड़ता था, जिसके प्रवेश द्वार पर ही छितवन की छाँह मिलती थी। उस उपवन में जाने तथा लौट कर आने का यही द्वार था। इसलिए दोनों बार इसकी छाँह मिलती थी। ठीक यहीं से थोड़ी दूर मरघट था। अतः मैं कभी-कभी श्मशान भी घूम आता था। शव के साथ जाते-आते लोग भी इसके नीचे अवश्य विश्राम करते थे। छितवन की छाया से मेरा दूसरा परिचय उस समय हुआ, जब मैं शिविका पर चढ़कर गौना कराकर लौट रहा था। गर्मी का दिन था। मैं छितौनी घाट पर पहुँचा, वहीं छितवन की छाया देख कर शिविका से उतर कर विश्राम करने लगा, मुझे बड़ा आनन्द आया। वह छितवन मेरी प्रीति की साक्षी है। छितवन की छाया से मेरा तीसरा परिचय कम्पनी बाग में हुआ। भाद्रपद का महीना था। उसके नीचे छाया बैठकर मैंने विश्राम किया। मन में काफी उल्लास था। जैसे घर में आराम मिलता था, वैसे ही छितवन के तले मिला—

'घर वही है जो थके को
रैन भर का हो वसेरा।'

छितवन के विषय में यह लोक प्रसिद्ध है कि इसकी छाया में जाने से पुण्य नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि इसका वृक्ष कम पाया जाता है, इसे कोई लगाता नहीं। इसका बीज स्वयं पृथ्वी में पड़कर अंकुरित एवं पल्लवित होता है। यह स्वयंभू के समान है, अमंगल को भी मंगल करने वाला है। भले ही लोग इसके नीचे जाने से अपना अमंगल मानें या पुण्य की हानि समझें, परन्तु मैं तो इसकी छाया पड़ने से अपना मंगल और पुण्य ही मानता हूँ।

छितवन के लिए किसी वनमहोत्सव की आवश्यकता नहीं, वह मरघट का शृंगार है। वह मिट्टी के शरीर का उत्कर्ष है और शरीर के मिट्टी में मिल जाने पर उसका एकमात्र अवशेष। अतः मानवो, यदि इसकी छाया में आना हो, तो सम्भल के आना, सोच-विचार के आना। कहीं ऐसी धारणा न हो कि इसकी छाया में पुण्य न समाप्त हो जाय और अन्त में पश्चात्ताप न हो।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निवन्ध भाषा, भाव तथा शैली सभी दृष्टियों से प्रशस्त निवन्ध है।

(६) चिरइया एक बोलेले

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निवन्धों में 'चिरइया एक बोलेले' नामक निवन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वान् लेखक ने इस निबन्ध का शीर्षक भोजपुरी मंगल गीत की एक पंक्ति को वनाया है, जिसकी पहली कड़ी है—

'ए भोरे रे भइले भिनुसार चिरइया एक वोलेले, मिरग बन चूँगेले।

यह गीत विवाह के पाँच दिन पूर्व से विवाह के दिन तक भोर के आवाहन के रूप में प्रथम मंत्र की भाँति उच्चरित होता है। इस गीत में भोर का स्मरण, पितरों का स्मरण, घर के अभाव का स्मरण और मंगल के अभाव प्रभाव का स्मरण किया जाता है।

इस प्रातःकालीन बोलनेवाली चिरइया का तात्पर्य मुर्गा से नहीं है, जिसका शब्द कर्कश होता है; बल्कि ठाकुर चिरइया से है, जो 'ठाकुरजी ठाकुरजी' की मीठी वोली बोलती है। इस चिरइया का शब्द बहुत मधुर होता है।

आकाश में शुक्र तारा का उदय होता है, उसके थोड़ी देर बाद इसकी रागिनी प्रारम्भ होती है। अतः इस चिरइया का शब्द बहुत कम लोग सुन पाते हैं। भोर में बहुत देर तक सोने वालों से इसके शब्द से तथा इस चिरइया का परिचय बड़ा दुर्लभ है। इससे परिचय तो उनका होगा, जो स्त्रियाँ सूर्योदय के पहले आँटा पीसने के लिए जाँते पर जाती हैं, जो किसान हल लेकर खेतों पर जाते हैं।

ठाकुर चिरइया का शब्द जागरण का संदेश है। वह 'ठाकुरजी ठाकुरजी' कह कर सभी को जगाती है।

भोर तो सभी जगह होती है और सर्वत्र कोई-न-कोई पक्षी अपना शब्द सुनाते हैं, भोर का सन्देश देते हैं। परन्तु ठाकुर चिरइया का सन्देश तो महत्त्व-पूर्ण है। यह युग ही सन्देशों का युग है। गीता में भी सन्देश है—

'त्यक्त्वोतिष्ठ परं तप'

परन्तु ठाकुर चिरइया का सन्देश बड़ा निराला सन्देश है—भोर की बेला आ गई, अब जागो, ठाकुर चिरइया बोलने लगी, मृग वन में चुगने चलें, हलधर खेतों की ओर चलें, बहुएँ जाँते पर चलें, उठो, जागो और सोये हुए पितरों को जगाओ। दूध दूहने जायें, घर में न धेनु हैं, न गाभिन गायें ही हैं। बहँगियों दूध आये और छाछ की नालियाँ बह निकलें, क्योंकि महान् मंगल की बेला आई है।

ए भोर रे भइले भिनुसार चिरइया,
एक बोलेले, मिरग बन चूँगेले।
ए भोर खेतवन हर लेके चल,
हरवहवा त बहुवर जाँते॥
ए जाहि रे जगावहु,
कौन बाबा जासु दुहावन।
ए नहिं मोरे धेनु गाभिन,
सब मोरे ऊसर।
ए दूधवा त आवे बहिंगवा,
त मठवन नारि बहै॥

यह सन्देश उस अकेली चिड़िया की सुरीली कंठध्वनि से जो सुन पाया, वह बड़भागी है और जो उसे सुनकर उसे प्रत्येक मंगल बेला में अपने स्वर में

भरकर सुन पाया, वह महा बड़भागी है। इसके विपरीत वे सभी अभागे जिन्होंने ठाकुर चिरइया की पहली बोली क्षण भर के लिए भी नहीं सुनी।

चिरइया का कितना आनन्दमय सन्देश है। चिरइया एक होते हुए अनेक को चुनौती देती है। अपने स्वर की उच्चता के बल पर नहीं, ब अपनी शाश्वत मधुरता और पवित्रता के बल पर। उसकी बोली में नवमं के उदय की सूचना है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, तथा शैली समस्त दृष्टियों से उत्तम है।

(७) धीरे-धीरे मुरली बजाउ

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'धीरे-धीरे मु बजाउ' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक ने इस नि का शीर्षक कवि विद्यापति द्वारा लिखित पद की एक पंक्ति को बनाया है, निम्नाङ्कित है—

नन्द क नन्दन कदम्ब क तरु तर,
धीरे-धीरे मुरली बजाउ।
समय संकेत निकेतन बइसल,
बेरि बेरि बोल पठाउ॥
सामरि तोरा लागि,
अनुखन विकल मुरारि।
जमुना क तीर उपवन उदवेगल,
फिरि फिरि ततहि निहारि॥
गोरस बेचए अवइत जाइत,
जनि जनि पुछ बनमारि।

एक समय था, जब नन्दनन्दन कृष्ण ने कदम्ब के नीचे बांसुरी बजाई और ब्रज की गोपियों को उसकी ध्वनि से मोहित किया था। शरद की पूर्ि की रात्रि में उनके साथ रास रचाई थी। उस मुरली की ध्वनि ऐसी मधुर कि जड़-चेतन सभी उससे प्रभावित थे। उसके मधुर स्वर से रसोई के सूखी लकड़ी भी आर्द्र हो जाती थी। इसी से तो एक गोपी कहती है मुरारि। रांधने के समय तो यह रसीली बांसुरी न छेड़ा करो, क्योंकि मधुर स्वर को सुनते ही यह सूखी लकड़ी गीली हो जाती है, भभकती भी मन्द पड़ जाती है। अतः इस समय तो दया करो—

'मुरहर, रन्धन समये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम् ।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम् ॥

वास्तव में मुरली बहुत बड़ी तपस्विनी है। इसीलिए तो उसे कृष्ण की अधर-शय्या मिली है। गोपियाँ उसे सौत समझती हैं और नन्दनन्दन को अनेक प्रकार का उलाहना देती हैं, परन्तु सच्ची बात समझकर ही उपालम्भ देना उचित है—

ग्वारिन समुझि उरहनो देहु ।

बाँसुरी वन की नहीं, उपवन की नहीं, आँगन की नहीं, गगन की नहीं, तन की नहीं, यह मन की चीज है।

इसलिए मोहन धीरे-धीरे मुरली टेरो, जब तक गोपी स्वयं गोरस की मटकी चरणों में न लुटा दे—

धीरे-धीरे मुरली बजाउ ।'

आज देश में पुनः मुरलीधर कृष्ण की आवश्यकता है, गोपाल की आवश्यकता है, जो मधुर ध्वनि से लोक में प्रेम का संचार कर सकें।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टियों से प्रशस्त निबन्ध है।

(८) तुम चन्दन हम पानी

डॉ॰ विद्यनिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'तुम चन्दन हम पानी' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। यह व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध है, जिसका सम्बन्ध विद्वान् लेखक से है। लेखक का कथन है कि मेरे पिता तथा दो चाचा घर में प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक पूजापाठ करते थे। अतः चन्दन घिसने के लिए घर में तीन होरसे तथा तीन चन्दन की लकड़ी का होना स्वाभाविक ही था। वे लकड़ियाँ भी मलयगिरि की थीं। घर में रक्तचन्दन या देवीचन्दन भी था, जिसका प्रयोग प्रायः रविवार तथा नवरात्र में होता था। मैं पञ्चवर्षीय बालक पूजा के समय अपने पितृव्य के निकट बैठ जाता था। वे एक घण्टे तक पूजा करते थे। बीच-बीच में यदि किसी चीज की आवश्यकता होती थी, तो वे देववाणी में कहकर संकेत करते थे और मैं वह वस्तु उन्हें लाकर दे देता था। वे गौरी, गणेश, पार्थिव शिव, एकादश रुद्र, दुर्गासप्तशती तथा श्रीमद्भागवत पर चन्दन चढ़ाने के बाद अवशिष्ट चन्दन मेरे ललाट पर लगाने के पश्चात् अपने

ललाट पर लगाते थे। तत्पश्चात् मुझे पूजा का प्रसाद देते थे, जिसके लिए मैं घण्टों बैठा रहता था। यद्यपि अब चन्दन-तिलक से भाल चर्चित करने का शुभ अवसर नहीं मिला, पर बालपन के चन्दन की सुगन्धि अब भी मिलती है।

चन्दन के विषय में वे पितृव्य जी कहा करते थे कि चन्दन होरसा पर घिस कर बिना देवता के सिर (ललाट) पर चढ़ाये अपने ललाट पर लगाने से दोष होता है।

चन्दन का वृक्ष बहुत ही महान् है। उसे भुजंग आच्छादित किये रहते हैं, पर वह अपनी सुगन्धि से अपने निकटवर्ती कंकोल, निम्ब तथा कुटज आदि अनेक वृक्षों को अपने समान ही चन्दन बना देता है। मनुष्य उन्हीं का चन्दन के रूप में उपयोग करता है। होरसा, चन्दन और पानी जब तीनों का सम्बन्ध होता है, तब चन्दन घिसता है और देवताओं के ललाट चर्चित करने के योग्य होता है—

'तुलसि दास चन्दन घिसे, तिलक देत रघुबीर।'

एक सन्त का कथन विचारणीय है—

'प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी।'

प्रभु जी चन्दन क्यों और हम पानी क्यों हैं? इसका तात्पर्य यह है कि जो मेरे आराध्य देव हैं, उन्हें प्रथम चन्दन की आवश्यकता है और वह चन्दन पानी से घिसा जाता है, तब अर्चन के योग्य होता है। जिस प्रकार चन्दन और जल का सामञ्जस्य है, वैसे है भगवान् एवं भक्त का। मेरे पितृव्य मिट्टी को सानकर पार्थिव शिव की सुन्दर आकृति बनाते, उनके आस-पास की मिट्टी का गौरी-गणेश रचते और चारों ओर से ग्यारह रुद्रों की पंक्ति मिट्टी की ही खड़ी करते, तदनन्तर इनके ऊपर रुद्राभिषेक के मंत्रों से अभिषेक करते तथा इनके ऊपर चन्दन चढ़ाते। चन्दन चर्चित हो जाने पर ही उन्हें गन्ध-माल्य, धूप-दीप और नैवेद्यादि से पूजा करते थे। इस प्रकार क्रमबद्ध पूजा करने से उन्हें पूर्ण सन्तोष होता था। मलयज (चन्दन) घिसा जाता है, तो उसमें से गन्ध पैदा होती है। रक्त चन्दन घिसा जाता है, तो उसमें से राग जगता है। मलयज (चन्दन) में प्रभु की कृपा अधिक घिसती है और अपना जीवन अल्प मात्र लगता है। अतः हम प्रभु को चन्दन और अपने को पानी से समानता मानकर चलते हैं। एक चन्दन और है, जिसे गोपी चन्दन

कहते हैं। इसके सम्बन्ध में मेरी वैष्णव चाची कहती थीं कि जिस सरोवर में गोपियों ने स्नान करके भगवान् कृष्ण को पति रूप में प्राप्त किया था, उस तालाब की मिट्टी ही गोपी चन्दन बन गई। चन्दन हमारी संस्कृति है, चन्दन हमारा मंगल है, नवोत्कर्ष है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली से प्रशस्त एक सांस्कृतिक निबन्ध है।

(९) आँगन का पंछी

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'आँगन का पंछी' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह एक व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध है, जिसमें लेखक ने आँगन के पंछी के रूप में गौरेया का वर्णन किया है। गाँवों में यह प्रसिद्ध है कि जिस घर में गौरैया अपना घोंसला नहीं बनाती, वह घर निर्वंश हो जाता है। एक तरह से घर के आँगन में गौरैयों का धृष्ठ बनकर चहचहाना, दाने चुंग कर मुड़ेरी पर बैठना, प्रातः-सायं तिनके बिखेरना, रात घोंसले में विश्राम करना — उनका सभी काम आनन्द-दायक होता है।

फूल तो बहुत हैं, जो अपनी सुन्दरता तथा गन्ध के लिए प्रसिद्ध हैं — बेला, गुलाब, जूही, चमेली, कुमुद, कमल। परन्तु तुलसी की भी विशेषता है, वह भी अपनी मंजरी के साथ फूलती है। यद्यपि उसमें कोई रूप-रंग नहीं, पर वह आँगन की शोभा बढ़ाती है, वह सभी पुष्पों से पूज्य है, विष्णु की पूजा के लिए प्रसिद्ध है। अतः आदरणीय है। उसी प्रकार पक्षी तो बहुत है और उनके रूप-रंग भी बहुत ही मोहक हैं, परन्तु गौरैया का विशेष महत्त्व है। यद्यपि उसमें कोई सुन्दर रूप-रंग नहीं, लेकिन वह पक्षियों में ब्राह्मण पक्षी के रूप में पूज्य है। इसलिए जब लोग चिड़ियों का शिकार करते हैं, तो वे गौरैया का शिकार नहीं करते, गौरैया मारना पाप समझते हैं।

एक दिन अखबार में एक समाचार छपा कि चीन के लोग गौरैया का शिकार करते हैं। लाखों की संख्या में वहाँ के तरुण अपने हाथों में बन्दूक लेकर गौरैयों का पीछा करते हैं, जिससे उनका विनाश हो। वास्तव में, उनका यह कृत्य अमानवीय है और उनके इस अभियान पर हँसी आती है कि गौरैया मारने के लिए बन्दूक का प्रयोग करते हैं।

चीन के लोग ऐसा कर्म इसलिए करते हैं कि गौरैया खेतों में जाकर अन्न खाती है, परन्तु वे लोग यह नहीं सोचते कि वह जितना अन्न खाती है, उससे कई गुना अधिक उन्हें लाभ भी पहुँचाती है, खेती को नष्ट करने वाले अनेक कीड़ों-मकोड़ों को खा जाती है।

यह भी विचारणीय है कि वे जितने रुपये का अन्न खाती हैं, उन्हें मारने में उससे कई गुना रुपयों की गोलियाँ बरबाद हो जाती होंगी।

इस पर विचार करने से यह पता चलता है कि गौरैया मारने का यह अभियान जिसने प्रारम्भ किया, उन्हें अपनी राह नहीं मालूम थी। उन्हें इस बात का बिल्कुल पता नहीं कि इस राह का अन्त कहाँ है? आज गौरैया है, कल घर की बिल्ली हो सकती है, परसों घर का दूसरा पशु हो सकता है और चौथे दिन घर के प्राणी भी हो सकते हैं। यह आक्रोश असीम है, इसका अन्त नहीं है। गौरैया मेरे लिए छोटी नहीं है, बहुत बड़ी है, वैसे ही जैसे मेरी दो साल की मिनी, छोटी होती हुई भी मेरे लिए बहुत बड़ी है। वही मिनी जब घर में गौरैयों को देखकर नाचती है, उन्हें बुलाती है, उनके पास आने पर खुशी में ताली बजाती है, उन्हें धमकाती है — उस समय आनन्द की सीमा नहीं रहती। मुझे गौरैयों ने विवश किया, एक केवल मेरी मिनी नहीं, बल्कि अनेक मीनियों ने विवश किया, तुलसी ने विवश किया, तब मुझे कहना पड़ा कि 'ऐ धरतीवासियो! धरती वही नहीं है, जो तुम्हारे पैरों के नीचे है, बल्कि धरती तुम्हें अपने और असंख्य शिशुओं के साथ अपनी गोद में भरने वाली व्यापक सत्ता है। यह गौरैया, यह तुलसी, यह मेरी मिनी या तुम्हारी मिनी उस विरासत की असली मालिक हैं, जो धरती से प्राप्त है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली सभी दृष्टियों से उत्तम निबन्ध है।

(१०) मेरी रूमाल खो गई

डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्धों में 'मेरी रूमाल खो गई' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध है, जिसका सम्बन्ध लेखक के जीवन से है। लेखक का कथन है कि पता नहीं, क्यों लोग मेरी याददाश्त की प्रशंसा करते हैं, जब कि हालत यह है कि कोई सफर ऐसा नहीं जाता, जिसमें कोई न कोई चीज़ कहीं न कहीं गुम न हो। कभी धोती, कभी गिलास, कभी जूता, कभी शीशा,

कभी कलम, कभी किताब—गरज की जिस सफर में मैं अक्षत बचकर चला आता हूँ, उसको घर के लोग दुर्घटना मानते हैं। घर पर ही तो दिन में कई बार कलम गायब होती है। पिछले लिखे लेख तो जब उनकी जरूरत होती है, तो कभी मिलते ही नहीं। अपने ऊपर बड़ी झुंझलाहट होती है कि आखिर इतना गड़बड़झाला कैसे हो जाता है। चिट्ठी-चपाते के बारे में तो और भी बुरा हाल है। एक-एक पखवारे बाद जब बीस-पच्चीस चिट्ठियों का जवाब लिखने बैठता हूँ, तो देखता हूँ कि चिट्ठियों की बात याद है, तो पते गायब है। यदि पता भी लिख गया, तो एक-एक सप्ताह तक चिट्ठियाँ जेब ही में पड़ी रह जाती हैं, डाक के बम्बे तक नहीं पहुँच पातीं।

कभी-कभी मेरी श्रीमती जी ने मेरी भुलक्कड़ प्रकृति पर नियंत्रण करने के लिए कुछ नुस्खों पर सुझाव दिया कि 'रूमाल में गाँठ बाँध देने से बातें स्मरण रहती हैं।'

एक दिन ऐसा हुआ कि गाँठ बाँधी हुई मेरी रूमाल खो गई। इस प्रकार तो मेरी कितनी रूमालें खोईं, उसकी चर्चा नहीं, परन्तु इस रूमाल के खोने की घटना कुछ विशेष है। इसमें मैंने एक मित्र के लिए ललित निबन्ध लिखने के लिए गाँठ बाँधी थी, पर रिक्शे की सवारी पर चलते हुए वह कहीं गिर गई। वह कहाँ गिरी, कुछ स्मरण नहीं आया। रिक्शा से यात्रा करते समय जहाँ-जहाँ रुका था, सभी का स्मरण किया। एक स्थान पर पान खाया, रूमाल थी। पोस्टमार्टम से लौट कर जब लाश गुजरी, तब भी रूमाल थी। राजोद्यान से घूम कर जब पुनः रिक्शा पर बैठा, उस समय भी रूमाल थी, आखिर तब कहाँ मेरी रूमाल खो गई।

इस खोई हुई साधारण खद्दर की रूमाल के बारे में मैंने जिससे पूछा, वह हँसने लगता था और कहता था—'कैसे अजीब आदमी हो ?'

मैंने कहा—हाय मेरी रूमाल, हाय मेरी रूमाल की गाँठ। रूमाल में गाँठ बाँधते समय कहा था—'विस्मरणशील, मैं यह गाँठ दे रही हूँ। याद रखना।'

पर मैं तो रूमाल ही खो बैठा, कौन सा ललित निबन्ध लिखना था, तगाजा जारी है, पर अब मैं क्या करूँ ? मेरी रूमाल खो गई।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली सभी दृष्टियों से उत्तम निबन्ध है।

प्रमुख स्थलों का विशदी करण
(अथवा)
प्रमुख स्थलों का भावपल्लवन

(१) कालिदास की शकुन्तला भरत की जननी नहीं, भारत की जननी है।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने शकुन्तला के महत्त्व पर प्रकाश डाला है, जो महर्षि कण्व के तपोवन से राजरानी पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए महाराजा दुष्यन्त के राजभवन में आई, परन्तु दुर्दैव वश राजरानी न बन सकी और राज-द्वार से पुनः दूसरे तपोवन को चली गई, क्योंकि गान्धर्व विवाह करने वाले राजा दुष्यन्त ने उसे अस्वीकार कर दिया। वह गर्भवती थी, उसके गर्भ में राजवंश का तेज था। उसने ऋषि आश्रम पर पुत्ररत्न को जन्म दिया। वह भरत की जननी बनी और ज्यों ही उसका भाग्योदय हुआ, वह पुनः राजकुल में आई और राजरानी पद पर प्रतिष्ठित होकर भारत की जननी बन गई।

(२) टिकोरा बसन्त की सफलता है। यह नये वर्ष का उदय है और मधुमास का चरम उत्कर्ष।

भावपल्लवन—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने टिकोरा का विवेचन किया है, जो वसन्त ऋतु के आगमन के साथ-साथ नवीन वर्ष के उदय का सन्देश देता है। सच पूछिए तो बसन्त की पूर्ण सफलता टिकोरे के ऊपर ही निर्भर है। वसन्तपञ्चमी के दिन इसका दर्शन शुभ सूचक है, पर मधुमास पूर्ण होते-होते तो यह अत्यन्त मंगलवर्द्धक हो जाता है। यह ऐसा समय है, जिसमें इसका उत्कर्ष ही नहीं, बल्कि चरम उत्कर्ष हो जाता है, इसका आकार वृद्धि को प्राप्त करके लोक के लिए परम आकर्षक बन जाता है।

(३) लोक का साहित्य जिसे बनना हो, उसे उस कदम्ब की फूली डाल की छाँह गहनी होगी, जिस पर बैठ कर नन्दनन्दन ने विश्व को आनन्द से उल्लसित करने वाली मुरली बजाई थी।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने लोक साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। वास्तव में लोक साहित्य के भीतर आकर्षण है, ऐसे ही साहित्य में कदम्ब भी है, जिसके नीचे खड़े होकर नन्दनन्दन

कृष्ण ने लोक को मोहित करने के लिए अपनी सुरीली बाँसुरी बजाई थी, जिसे सुनकर केवल नर-नारी ही नहीं; बल्कि पशु-पक्षी भी विमोहित हो जाते थे, यमुना की धारा स्थिर हो जाती थी। अतः लोक साहित्य का आनन्द कदम्ब तले है।

(४) सब कुछ लुटा कर हरसिंगार चुप रहता है। वह धरती को उसके स्नेह का प्रतिदान देकर फिर कुछ कामना नहीं रखता।

भावपल्लवन—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने हरसिंगार नामक पुष्प पर प्रकाश डाला है, जो अपने फूल का सर्वस्व देकर भी उसके बदले में किसी से कुछ नहीं चाहता। इसके पुष्प धरती पर बिखर कर उसकी शोभा बढ़ा देते हैं। अपनी वृद्धि के लिए यह पृथ्वी का केवल थोड़ा सा अंश लेता है, परन्तु उसके स्नेह में अपना सब कुछ लुटा देता है, अपने लिए कुछ भी नहीं रखता।

(५) छितवन के लिए किसी वन महोत्सव की अपेक्षा नहीं, वह मरघट का श्रृंगार है।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने छितवन के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। यह एक ऐसा वृक्ष है, जिसके वर्द्धन के लिए किसी भी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता। यह स्वतः विकसित होता है। यह किसी प्रकार का उत्सव नहीं चाहता, बल्कि स्वयं श्मशान की भी वृद्धि करता है। यह मरघट की शोभा है।

(६) आज का युग संदेशों से भरकर मधुबन का कूप बन गया है।

भावपल्लवन—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने वर्तमान युग की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। यह संदेशों का युग है। जिस प्रकार द्वापर युग में भगवान् कृष्ण के गोकुल से मथुरा चले जाने पर वियोगिनी गोपियों ने सन्देश के रूप में इतना पत्र भेजा कि मथुरा का कुआँ भर गया। उसी प्रकार कम पढ़े लिखे या विशेष पढ़े लिखे—सभी की लेखनी विभिन्न प्रकार के सन्देशों से युक्त है, मानो उनके पत्र-सन्देशों से अनेक कुएँ पट रहे हों।

(७) बाँसुरी उपवन की नहीं, वन की, आँगन की नहीं, गगन की और तन की नहीं, मन की चीज है।

विशदीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने बाँसुरी का विवेचन किया है, जिसे भगवान् कृष्ण ने वृन्दावन में कदम्ब के नीचे खड़े होकर बजाई थी। जिसका प्रभाव सीधे मन पर पड़ता था, मन मोहित हो जाता था। वह वंशी न तो उपवन की वस्तु है, न वन की, न आँगन की, न गगन की, न शरीर की, बल्कि वह तो एकमात्र मन की ही वस्तु है। उसमें एकमात्र मन को ही आकर्षित करने की शक्ति है, जिसे सुनकर तन की सुधि नहीं रहती।

(८) मलयज घिसा जाता है, तो गन्ध जगती है, पर रक्त चन्दन जब घिसा जाता है, जब राग जगता है।

भावपल्लवन—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने चन्दन के गुणों पर प्रकाश डाला है। मुख्यतः चन्दन दो प्रकार का होता है—मलय चन्दन, रक्त चन्दन। ये दोनों होरसे पर घिसे जाते हैं। मलय चन्दन सुगन्धित होता है और श्वेत होता है, जो देवताओं पर चढ़ाया जाता है। रक्तचन्दन का रंग लाल होता है। यह देवी के ऊपर चढ़ाया जाता है। मलय चन्दन प्रभु कृपा का द्योतक है और रक्तचन्दन भगवती की कृपा का द्योतक। अपने इष्ट देवताओं के ऊपर चन्दन चढ़ाने के पश्चात् ही अपने ललाट पर चन्दन चढ़ाना चाहिए।

प्रमुख स्थलों का संक्षेपीकरण

(१) कदम्ब का फूल··· ···मुरली बजाई थी।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने कदम्ब के फूल के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है। कदम्ब का फूल भले ही देखने में अन्य पुष्पों के समान सुन्दर न हो, परन्तु यह लोक मंगल का एकमात्र साधन है। इसी के नीचे खड़े होकर नन्दनन्दन कृष्णचन्द्र ने अपनी बाँसुरी बजाई थी, जिसे सुनकर जड़-चेतन सभी विमुग्ध हो गये थे।

(२) इस गन्ध साधना······अविकल।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने छितवन के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है। छितवन अपनी गन्ध के लिए आदरणीय तथा प्रशंसनीय है, भले ही उसमें अन्य पुष्पों के समान आकर्षण न हो।

(३) व्यष्टि रूप में आज··· ···समर्पण कर गये हैं।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने प्रभातकाल में बोलने वाली ठाकुर चिरइया का वर्णन किया है, जिसका शब्द बड़ा ही मधुर होता है—वह ठाकुर जी को पुकारती है। उसके शब्द में मांगलिक ध्वनि है, वैदिक मन्त्र है, जागरण का सन्देश है।

(४) बाँसुरी उपवन की······कैसे कर पाती।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने नन्दनन्दन कृष्ण की मादक भरी मुरली का विवेचन किया है, जो केवल मन पर प्रभाव डालती है, जिससे केवल गोपियों का मन विमोहित नहीं होता, यमुना का भी मन आकर्षित हो जाता है। ये सभी तन की सुधि भूलकर उस ध्वनि कारक की मनोहारिणी छवि में विभोर हो जाती हैं।

(५) पर मैं तो यह··· ···सन्निहित है।

संक्षेपीकरण—प्रस्तुत अवतरण के भीतर विद्वान् लेखक ने चन्दन के गुणों पर प्रकाश डाला है, चाहे मलय चन्दन हो या रक्त चन्दन, उसे होरसा पर जल के छींटों से प्रेमपूर्वक घिर कर पहले इष्ट देवता का भाल चर्चित करें, तत्पश्चात् उसे अपने ललाट पर लगावे। देव-अर्पित के बाद ही चन्दन का उपयोग अपने लिए करना चाहिए।

मानस का हंस

(१) 'मानस का हंस' उपन्यास की कथावस्तु

(अथवा)

'मानस का हंस' उपन्यास का सारांश

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' एक सफल एवं सशक्त उपन्यास है, जिसकी कथावस्तु ३१ परिच्छेदों में अंकित है। विद्वान् लेखक ने इस उपन्यास में गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवनवृत्त पर उनकी कृतियों रामचरितमानस, कवितावली, दोहावली तथा हनुमान्बाहुक एवं प्रामाणिक किंवदन्तियों के आधार पर प्रकाश डाला है।

विक्रमपुर निवासी पं० आत्माराम दुबे ज्योतिषी की धर्मपत्नी हुलसी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। जन्म के समय उस नवजात शिशु ने अपने मुख से 'राम' शब्द कहा। अतः वह शिशु 'रामबोला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण माता-पिता ने अनिष्ट की आशंका से बालक को घर में रखना उचित नहीं समझा, त्याग कर दिया। उस समय मुनिया नामक दासी ने उस होनहार बालक का पालन-पोषण किया पर वह भी असमय में ही मर गई। अन्त में बालक रामबोला अनाथ की तरह इधर-उधर भटकता हुआ सूकर खेत (वाराह क्षेत्र) में आया। घाघरा-सरयू के पावन स्थल पर महावीरजी का मन्दिर था। दर्शनार्थी वहाँ चना-गुड़ चढ़ाते थे। बन्दरों की संख्या बहुत अधिक थी। चना-गुड़ देखकर भोजन की इच्छा से बालक वहीं रह गया। हनुमान्जी में भक्ति बढ़ी, नरहरि बाबा से परिचय हुआ, जो बड़े ही सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने राम-भक्ति की ओर बालक का मन आकृष्ट किया। कुछ समय व्यतीत होने पर उन्हें बालक के यज्ञोपवीत संस्कार की चिन्ता हुई और उन्होंने इस होनहार बालक को अपने साथ लेकर सरयू तट पर अवस्थित राम-धाम अयोध्या में प्रवेश किया। उस समय मुगल आन्दोलन जोरों पर था, सर्वत्र-सन्नाटा छाया हुआ था। बाबा नरहरिदास महन्त सियारामशरण दास के यहाँ पहुँचे। उस रामपुरी अयोध्या में बालक रामबोला का १२ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। जिस समय

बालक भगवान् राम की मूर्ति को प्रणाम करने गया, उस समय उसके मस्तक पर भगवान् के ऊपर से तुलसी का एक पत्र गिरा, जिससे प्रसन्न होकर बाबा नरहरिदास ने कहा कि आज से 'रामबोला' तुलसीदास के नाम से प्रसिद्ध रहेगा। इसके बाद वहाँ से विदा होकर दोनों काशी के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य शेषसनातन के स्थान पर पहुँचे, जहाँ अनेक विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। तुलसीदास वहीं शास्त्र का अध्ययन करने लगे। विद्यार्थियों में वहाँ प्रसिद्ध था कि पीपल के वृक्ष पर भूत-पिशाच रहते हैं, परन्तु तुलसी को विश्वास था कि महावीरजी का नाम लेने से भूत-पिशाच निकट नहीं आते। उन्होंने इसी स्थान पर 'हनुमान् चालीसा' की रचना की। वहाँ के विद्यार्थियों में गंगाराम तुलसी के मित्र थे और वटेश्वर उनका विरोधी था। वह तंत्रविद्या जानता था और उसे सिद्ध करने के लिए श्मशान जाता था।

गुरु शेषसनातन की पाठशाला में तुलसीदास अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके शास्त्रपण्डित बन गये। इस समय इनकी अवस्था २३ वर्ष की थी। अब वे स्वयं छात्रों को शिक्षा देने लगे। एक दिन मेधा भगत के यहाँ से विद्यार्थियों को भोजन के लिए निमंत्रण आया, जिससे छात्रों में प्रसन्नता छा गई। मेधा भगवान् के परम भक्त थे, उनके यहाँ सदैव भजन-कीर्तन होता था। भक्तमण्डली में एक तरुण गायिका मोहिनी बैठी हुई थी। उसने एक भजन गाया—

सुनी री मैंने हरि आवन की बात।

तुलसीदास ने भी इसी पद को दुहराया। वे मोहिनी के रूप-लावण्य पर विमोहित हो गये थे और मोहिनी का भी मन इनके सौन्दर्य पर आकृष्ट हो गया था। तुलसी ने अपने मन को बहुत सँभाला, परन्तु उनके मन से उसकी छवि दूर न हो सकी।

गुरु शेषसनातन के आश्रम से विदा होकर तुलसीदास अयोध्या, सूकर क्षेत्र (वाराहक्षेत्र) तथा प्रयाग की यात्रा करते हुए अपनी जन्मभूमि विक्रमपुर पहुँचे। वहाँ राजा भगत से परिचय हुआ। इन्होंने इनका सम्मान किया।

पुरानी बस्ती यमुना की धारा में विलीन हो गई थी, अब नई बस्ती बन रही थी। तुलसीदास ने राजा भगत से कहा कि—"भगतजी, अब बस्ती का नाम आप ही के नाम पर 'राजापुर' होगा।"

तुलसीदास के लिए भी वहीं एक कुटी बनी। इनका मन आह्लाद से भर गया। अब ये वहीं रहकर रामकथा तथा ज्योतिष का चमत्कार दिखाने लगे। अन्न-वस्त्र तथा रुपये-पैसे की आय होने लगी। इनकी योग्यता का प्रचार होने लगा। यमुना के उस पार पं० दीनबन्धु पाठक ज्योतिषी रहते थे। जब उन्होंने तुलसीदास की प्रतिष्ठा की बातें सुनी, तो वे इनके साथ अपनी एक मात्र कन्या रत्नावली के विवाह के लिए लालायित हो उठे, जो रूप, गुण तथा विद्या में तुलसी के समान ही थी।

दीनबन्धु पाठक तुलसी के पिता आत्माराम के मित्र थे। एक दिन राजा भगत ने राजापुर में तुलसी की इच्छानुसार संकटमोचन हनुमान् की स्थापना कराई, जिसमें दीनबन्धु पाठक विशेष पण्डित के रूप में निमंत्रित थे। उसी समय वे तुलसी के द्वारा रामकथा सुनकर विशेष प्रभावित हुए और राजा भगत से बातें करके अपनी कन्या रत्ना के लिए तुलसी को वरण किया। समयानुसार शुभ मुहूर्त में तुलसीदास का रत्नावली के साथ विवाह हो गया। दोनों का वैवाहिक जीवन आनन्द के साथ व्यतीत होने लगा।

तुलसी के पाण्डित्य की चर्चा उस क्षेत्र में सर्वत्र व्याप्त हो गई। रत्नावली का चचेरा भाई गंगेश्वर भी ज्योतिष का पण्डित था, परन्तु तुलसी के समक्ष उसकी प्रतिष्ठा कम हो गई। अतः वह उनसे ईर्ष्या तथा द्वेष करने लगा। तुलसीदास ने उसे अपने घर आने के लिए मना कर दिया। अब वह समय उपस्थित हुआ जब रत्ना ने एक पुत्र को जन्म दिया, जो तारापति नाम से प्रसिद्ध हुआ। अब दाम्पत्य प्रेम इतना दृढ़ हो गया कि दोनों एक-दूसरे से क्षणमात्र के लिए भी पृथक् होना नहीं चाहते थे। एक दिन शय्या पर विश्राम करते हुए तुलसी ने रत्ना से कहा कि 'तुमसे सत्य कहता हूँ रत्ने ! अब तो बाहर-भीतर कहीं भी जाता हूँ, तो तुम्हारे बिना मेरा मन उचट-उचट जाता है। तुम दोनों को छोड़कर अब मैं जीवित नहीं रह सकता।'

तदुपरान्त उन्होंने काशी जाने की चर्चा करते हुए कहा कि 'रत्ने ! पाँच सात दिनों के लिए बाहर जाता हूँ, तो तुम्हारे लिए मेरे प्राण बावले हो जाते हैं। काशी का यह फेरा तो कम-से-कम दो-तीन मास ले ही लेगा।'

तुलसीदास काशी में अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के यहाँ पहुँचे। काशीराज के एक प्रश्न को सुलझाने में लगे हुए थे। अपने मित्र तुलसी को देखते ही बहुत ही प्रसन्न हुए कि अब कार्य सुलझ जायेगा।

उसी समय तुलसीदास ने हनुमानजी को स्मरण करके 'रामाज्ञाप्रश्न' बनाया और कहा कि 'सवा पहर दिन चढ़ने पर राजकुमार सकुशल घर लौट आयेंगे।'

गंगाराम ने राजा को यह शुभ संदेश सुनाया और उन्होंने इन्हें सवा लाख चाँदी के सिक्कों की एक थैली भेंट की। वे प्रसन्नतापूर्वक घर आये और वह थैली अपने मित्र तुलसी को समर्पित कर दी, परन्तु उन्होंने कहा कि 'मित्र! यह सब तुम्हारा है।'

अन्त में बहुत आग्रह करने पर तुलसी ने एक लाख गंगाराम को और बारह हजार स्वयं ग्रहण करके शेष धन को काशी में हनुमानजी के मन्दिर निर्माणार्थ तथा धर्मार्थ जमा कर दिया।

पति के आने में विलम्ब देखकर रत्ना अपने बालक के साथ नैहर चली गई।

तुलसीदास को काशी में पत्नी और बालक की याद सताने लगी और वे अपने मित्र से आज्ञा लेकर घर आये, परन्तु पत्नी को न देखकर वे राजा भगत के घर से होते हुए रात के अन्धकार में हवा-पानी के तूफान में नौका द्वारा यमुना पार कर ससुराल के द्वार की कुण्डी खटखटाये। गंगेश्वर ने दरवाजा खोला। तुलसीदास पत्नी के कक्ष में गये, भींगे वस्त्र बदले, विश्राम किया।

रत्ना के कुशल-समाचार पूछने पर उन्होंने गंगाराम ज्योतिषी के यहाँ 'रामाज्ञाप्रश्न' रचने, उसके द्वारा सवा लाख चाँदी के सिक्के भेंट पाने तथा विभिन्न रूपों में उसके विभाजन की बात भी कही। रत्ना के हृदय में रुपये की बात सुनकर बड़ी हलचल मची। उसने कहा कि लक्ष्मी कहती हैं कि 'जब मैं आऊँ, तब मुझे घर से निकालने की उतावली मत करो।'

रुपये की बात को लेकर पति-पत्नी में परस्पर विवाद होने लगा। रत्ना ने कहा कि 'तुम चाम के लोभी हो, जीव में रमे राम के नहीं'। पत्नी की बातों से तुलसी को ज्ञान हुआ कि 'मैं कामी हूँ, राम को छोड़कर काम को चाहा।'

उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—'रत्ने, आज से तुम मेरी गुरु हो। तुमने मेरी आँखें खोल दीं।'

तुलसी के मन में वैराग्य हो गया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया—

'अब लौं नसानी अब न नसैहों।'

वे उसी रात राम को पाने के लिए चल दिये। अब उन्हें धन, वैभव, पत्नी, पुत्र तथा मित्र किसी से भी सम्बन्ध नहीं रहा। वे यमुना के किनारे राम ध्यान में चलते रहे। कभी रत्ना और तारा की भी याद आ जाती थी। वे चित्रकूट पहुँच गये। कामद गिरि पर ब्रह्मदेव से भेंट हुई, जो इनके परिचित थे। जब राजा भगत को, तुलसीदास के वैराग्य की बात विदित हुई, तब वे रत्नावली के साथ चित्रकूट आये, उनसे मिले और तारापति के मरने तथा रत्नावली के आने की बात कही। पुत्र-शोक में तुलसी के मुख से सहसा निकल गया—

'हानि-लाभ जीवन-मरन, जस-अपजस बिधि हाथ।'

रत्ना अपने स्वामी के समक्ष उपस्थित हुई, परन्तु उन्होंने माया को साथ रखना स्वीकार नहीं किया।

पत्नी ने कहा कि 'आपकी झोली में खरी, कपूर सभी तो झलक रहा है आप इन्हें अपनायेंगे और पत्नी का त्याग करेंगे — यह कहाँ तक उचित है?'

तुलसी के मन ने इन्हें सावधान किया — 'अब माया में मत बँधना तुलसी।'

तुलसीदास माया को वहीं छोड़कर तीव्र गति से वहाँ से बाहर निकल गये और प्रयाग होते हुए गंगातटवर्ती वाल्मीकि आश्रम पहुँचे, जहाँ निर्वासित जगदम्बा सीता ने लव-कुश को जन्म दिया था। वहाँ सीतावट देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो महर्षि वाल्मीकि आज्ञा दे रहे हों कि 'तुलसी, तुम अयोध्या जाकर भाषा में रामायण की रचना करो।'

वहाँ से तुलसीदास अयोध्या पहुँचे। वे रामजन्मभूमि के ऊपर बनी हुई बाबरी मस्जिद के द्वार पर फकीरों के बीच रहने लगे और भक्तों को रामघाट पर रामकथा सुनाने लगे। इनके मधुर स्वर से श्रोता प्रभावित होने लगे और इन्हें अन्न-धन-वस्त्रादि की प्राप्ति भी होने लगी, प्रतिष्ठा भी बढ़ी, जिससे दूसरे कथा-वाचकों रामलोचन तथा वैदेहीवल्लभ आदि को ईर्ष्या हुई। वे तुलसी को अपमानित करने के लिए पति-परित्यक्ता गर्भवती को उनके निकट भेजा, परन्तु भक्तमण्डली ने उसे धिक्कारते हुए वहाँ से भगा दिया। तुलसीदास 'जानकी-मंगल' की रचना कर चुके थे। अब वे रामकथा को विस्तार देना चाहते थे।

इन्होंने वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्मरामायण को आधार बनाया और रामजन्म के दिन 'रामचरितमानस' का जन्म हो गया—

'नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥'

'रामचरितमानस' के कारण तुलसीदास की ख्याति बढ़ गई, परन्तु वैदेहीशरण इस बात को सहन न कर सके। उन्होंने ईर्ष्यावश कुछ चोरों को सम्मानित करके 'रामचरित' चुराने के लिए तुलसी की कुटिया में भेजा, परन्तु उन्होंने देखा कि उसकी रक्षा हनुमान्‌जी कर रहे हैं। अतः निराश होकर वे लौट आये।

पण्डितों की ईर्ष्या तथा द्वेष से दुःखी होकर तुलसीदास वहाँ से काशी में अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के यहाँ चले आये। यहीं टोडरमल से भी परिचय हुआ। इन्होंने तुलसीदास के रहने के लिए अस्सी घाट पर एक कुटिया बनवा दी और उसकी रक्षा के लिए एक अखाड़ा बनवाया, जहाँ हट्टे-कट्टे पहलवान रहते थे।

काशी में भी तुलसी के विरोधी संस्कृताभिमानी पण्डितों की कमी नहीं थी। वे उनकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा देखकर उन्हें अनेक प्रकार से अपमानित तथा पीड़ित करने लगे।

एक दिन तुलसीदास की कुटिया के सामने एक ब्रह्महत्यारा आया और कहने लगा—'है कोई राम का प्यारा, जो इस ब्रह्म हत्यारे को भोजन करावे।'

तुलसी ने बड़े प्रेम के साथ उसे बुलाया और उसका हाथ-पैर धुलाकर भोजन कराया। तुलसी के इस व्यवहार की चर्चा सर्वत्र व्याप्त हो गई। अनेक अहंमानी पण्डित उन्हें दण्ड देने के लिए तत्पर हो गये। किसी ने धूत कहा, किसी ने अवधूत, किसी ने राजपूत तथा किसी ने जुलाहा कहा, परन्तु तुलसी के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने कहा—

'धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की वेटी से वेटा न व्याहब······ ॥

तुलसी का रामचरितमानस पूर्ण हुआ और उसी के अनुसार काशी में रामलीला का भी श्रीगणेश हुआ। तुलसीदास उसी समय गोस्वामियों के मठ के मठाधीश पद पर प्रतिष्ठित होकर महाकवि तुलसीदास से गोस्व तुलसीदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये। भक्तमण्डली इनका दर्शन कर

लिए आने लगे, परन्तु इनकी प्रतिष्ठा जैसे-जैसे बढ़ती गई, वैसे-वैसे विरोधी पण्डितों का द्वेष भी बढ़ता गया। एक दिन राजा भगत के साथ रत्नावली भी दर्शनार्थ आई, परन्तु गोस्वामीजी ने अपने दरवाजे पर परदा लगवा दिया और उसे दर्शन नहीं दिया। रत्नावली ने कहा कि 'यदि आप इस समय मुझे दर्शन देना नहीं चाहते हैं, तो मुझे 'रामचरितमानस' की एक प्रति तथा मेरी मृत्यु के पूर्व अपना दर्शन मुझे अवश्य दें।'

इस बात को गोस्वामीजी ने स्वीकार कर लिया और राजा भगत के साथ रत्ना राजापुर लौट आई।

काशी के अहंमानी पण्डितों ने काशी के विशिष्ट विद्वान् मधुसूदन सरस्वती से तुलसी के 'रामचरितमानस' के विषय में जिज्ञासा की। उन्होंने स्पष्ट रूप से अपना मत व्यक्त किया—

'आनन्दकानने ह्यस्मिन् तुलसी जङ्गमस्तरुः।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता'॥

गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिष्ठा निखर कर सामने आ गई, परन्तु विरोधियों को अब भी सन्तोष नहीं हुआ। इन्होंने मठाधीश का पद त्याग दिया और ये पुनः अस्सी स्थित अपनी कुटिया में आ गये। इसी समय एक वैरागी ने एक बड़े हाकिम की स्त्री को भगाकर कहीं छिपा दिया, जिससे कोतवाल की आज्ञा से वैरागियों की धर-पकड़ प्रारम्भ हो गयी। गोस्वामीजी भी पकड़े गये। कोतवाल ने इनसे कहा कि 'सुना जाता है कि तुम कमाल दिखलाते हो?'

गोस्वामीजी ने कहा कि 'मैं कुछ नहीं जानता, केवल रामनाम जपता हूँ। मेरे कमाल तो बजरंगवली हनुमान्‌जी हैं।'

कोतवाल ने इन्हें वन्दीगृह में बन्द कर दिया। काशी के अहीर गोस्वामीजी के भक्त बन गये थे। वे रामलीला में वानर बनने वाले थे। वे सभी लट्ठ लेकर कोतवाली को घेर लिये, मानो वानरों की सेना ही वहाँ टूट पड़ी हो।

कोतवाल साहब ने तुरन्त ही गोस्वामीजी को मुक्त करने का आदेश दिया।

गोस्वामीजी ने कहा—'मैं अकेले नहीं, सभी वैरागियों के साथ छूटूँगा।

तुलसीदास की कृपा से सभी वैरागी मुक्त हो गये ।

काशी में भगवान् विश्वनाथजी के नये स्वर्णमन्दिर में प्रतिष्ठा होने वाली थी । रुद्रबीसी का समय था । महामारी फैली हुई थी । तुलसीदास बाहु-पीड़ा से पीड़ित होकर हनुमान्‌जी का स्तवन कर रहे थे । वहाँ अनेक भक्त उपस्थित थे, रहीम भी थे ।

महामारी समाप्त हुई । तुलसी ने व्रज की यात्रा की । इसी समय इनके विरोधियों ने टोडरमल की हत्या कर दी । जब ये यात्रा से लौटकर काशी आये, तब टोडरविहीन काशी इन्हें श्मशानवत् प्रतीत हुई । वे अपनी जन्म-भूमि राजापुर चले गये, जहाँ रत्नावली इनकी प्रतीक्षा कर रही थी । उसे दर्शन दिये, उसका वही अन्तिम क्षण था । वे पुनः काशी चले आये ।

गोस्वामी तुलसीदास का भी अब अन्तिम क्षण था । उनके निकट राजा, गंगा, कैलाश तथा जयराम आदि अनेक भक्त उपस्थित थे । शरीर में पीड़ा के कारण इनके मुख से 'राम-राम' निकलता था । उन्होंने अपने मित्र गंगाराम से पूछा—'मित्र, आज कौन तिथि है ?' गंगाराम ने कहा—'श्रावण कृष्ण तीज़ ।'

कैलाश ने कहा—'भगतजी शीघ्रता करो, अब मेरा मित्र चला—

'राम नाम जस बरनि के, भयो चहत अब मौन ।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सौन ॥'

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित उपन्यास कथावस्तु की दृष्टि से तो उत्तम है ही, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, भाषा-शैली आदि समस्त औपन्यासिक तत्त्वों से युक्त एक सफल उपन्यास भी है ।

(२) 'मानस का हंस' उपन्यास के नायक का चरित्र-चित्रण

अथवा

तुलसीदास का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है, उनमें तुलसीदास का चरित्र प्रशस्त चरित्र है । उपन्यासकार ने इन्हें 'मानस का हंस' कहा है । ये उपन्यास के नायक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं । एक नायक के लिए जितने गुण अपेक्षित हैं, इनके चरित्र में प्रायः सभी विद्यमान हैं ।

यहाँ हम इनके कतिपय गुणों के आधार पर इनके चरित्र पर प्रकाश डाल रहे हैं।

राम-भक्त—तुलसीदास रामभक्त थे। जन्म के समय ही इनके मुख से 'राम' शब्द निकला, जिससे इनके बचपन का नाम 'रामबोला' था। ये राम को ही अपना पिता और सीता को अपनी माता कहते थे। प्रिय पत्नी की फटकार से इनकी रामभक्ति दृढ़ हुई। इन्होंने राम-नाम लेने वाले एक हत्यारे को भोजन कराया। यद्यपि पण्डित-समाज इनके इस कृत्य से असन्तुष्ट हो गया, परन्तु इनके विचार से राम-नाम लेने वाले में हत्या का दोष कहाँ? अब वह पापी कहाँ रहा? वह तो बिलकुल पाप रहित है। ये रामचरित की रचना करके वास्तविक अर्थ में राम-भक्त बन गये। मृत्युशय्या पर पड़े हुए भी इनके मुख से अन्त तक राम-नाम ही निकलता रहा, जो सच्चे रामभक्त का परिचायक है।

हनुमान्-भक्त—तुलसीदास हनुमान्‌जी के भी भक्त थे। माता-पिता से परित्यक्त होकर इधर-उधर भटकते हुए जब से सूकर क्षेत्र (वाराह क्षेत्र) में पहुँचे, तब वहाँ अवस्थित हनुमान्‌जी को देखकर वहीं एक चबूतरे पर विश्राम पाये। इन्होंने हनुमान् की प्रसन्नता के लिए 'हनुमान्-चालीसा' की रचना की—

भूत पिसाच निकट नहिं आवै।
महाबीर जब नाम सुनावै॥

अपनी जन्मभूमि राजापुर में हनुमान्‌जी की स्थापना कराये। काशी में गंगाराम ज्योतिषी के यहाँ 'रामाज्ञाप्रश्न' से प्राप्त बारह हजार रुपयों से हनुमान्‌जी के बारह मन्दिर बनवाये। जब यात्रा करते हुए ये वाल्मीकि आश्रम गये तो वहाँ इन्हें हनुमान्‌जी का दर्शन हुआ, जिनसे प्रेरित होकर इन्होंने अयोध्या में 'रामचरितमानस' का श्रीगणेश किया। जब मानस की पुस्तक चुराने के लिए चोर आये तो वे उसके रक्षक हनुमान् को देखकर वहाँ से भाग गये। कोतवाल की आज्ञा से जब अन्य वैरागियों के साथ ये भी पकड़े गये, तब कोतवाल ने इन्हें कमाल दिखाने के लिए कहा। उस समय इन्होंने उत्तर दिया कि 'मेरे कमाल तो केवल बजरंगबली हनुमान् हैं।' ये पंक्तियाँ हनुमान्‌जी के प्रति निष्ठा की परिचायक हैं।

गुरुभक्त—तुलसीदास गुरुभक्त थे। इनके सर्वप्रथम गुरु नरहरिजी थे, जिन्होंने वाराह क्षेत्र में इन्हें राम-कथा सुनाई। द्वितीय गुरु काशी के

प्रसिद्ध गुरु शेषसनातनजी थे, जिन्होंने इन्हें शास्त्रों की शिक्षा दी। ये दोनों गुरुओं के प्रति श्रद्धावनत थे। इससे इनकी गुरुभक्ति पर प्रकाश पड़ता है।

मित्रत्व-निर्वाह—तुलसीदास मित्रत्व-निर्वाह में कुशल थे। गुरु शेष सनातन के आश्रम पर अध्ययन करने वाले अनेक विद्यार्थी थे, परन्तु उनमें गंगाराम ज्योतिषी से इनकी घनिष्ठ मैत्री थी। एक दिन वे काशीराज के एक प्रश्न के समाधान में उलझे थे, जिसे इन्होंने 'रामाज्ञाप्रश्न' के द्वारा समाधान करके बता दिया कि 'राजकुमार सकुशल घर आ जायेंगे।'

काशीराज ने प्रसन्न होकर सवा लाख चाँदी के सिक्के पुरस्कार में दिया, जिसे दोनों मित्रों ने यथोचित बँटवारा किया। यह इनके मित्रत्व-निर्वाह का सूचक है।

पत्नीप्रेम—तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली से विशेष प्रेम करते थे। विवाह के पूर्व ही दोनों परस्पर आकर्षित थे। पाणिग्रहण के पश्चात् वह प्रेम दृढ़तर और पुत्ररत्न-प्राप्ति के बाद वह प्रेम दृढ़तम हो गया। ये क्षणमात्र के लिए भी अपनी प्रिय पत्नी से दूर होना नहीं चाहते थे। शय्या पर विश्राम करते हुए इन्होंने एक दिन अपनी पत्नी से कहा कि 'रत्ने, अब तो बाहर-भीतर कहीं भी जाता हूँ, तो तुम्हारे बिना मेरा मन उचट-उचट जाता है ···मेरे प्राण बावले हो जाते हैं।'

इन पंक्तियों में पत्नी के प्रति अटूट प्रेम निहित है।

ज्ञान की प्राप्ति—तुलसीदास के हृदय में पत्नी के उपदेश से ही ज्ञान की ज्योति जागृत हुई। जिस समय वे काशी से राजापुर आकर वहाँ अपनी पत्नी को न देखकर बरसात की आधी रात में यमुना को पार कर उसके नैहर में पहुँचे, उस समय पत्नी ने बात-चीत के प्रसंग में सहसा कह दिया कि 'तुम चाम के लोभी हो, राम के नहीं।'

पत्नी की बात सुनते ही इनके हृदय का अन्धकार दूर हो गया और ज्ञान का सूर्य चमक उठा। वे मन-ही-मन गुनगुना उठे—

'अब लौं नसानी अब न नसैहों।'

और ज्ञान के कारण इनका राग विराग में परिणत हो गया। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि तुलसीदास

का चरित्र अनेक महनीय गुणों से ओतप्रोत है, जिससे वे इस उपन्यास में एक आदर्श नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

(३) 'मानस का हंस' उपन्यास की नायिका का चरित्र-चित्रण
(अथवा)
रत्नावली का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन नारी-पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है, उनमें रत्नावली का चरित्र प्रशस्त है। यह उपन्यास की नायिका है। किसी उपन्यास की नायिका के लिए जितने गुण अपेक्षित हैं, प्रायः वे सभी गुण इसके चरित्र में विद्यमान हैं। यहाँ हम उन्हीं कतिपय गुणों के आधार पर इसका चरित्र-चित्रण कर रहे हैं।

विदुषी—रत्नावली पं० दीनवन्धु पाठक की एकमात्र कन्या है। अतः इसके ऊपर उनका विशेष स्नेह है। उन्होंने इसे पुत्रवत् पढ़ाया, लिखाया तथा विदुषी बनाया। अन्य शास्त्रों के साथ-साथ यह ज्योतिषशास्त्र में भी निपुण थी। यह जानती थी कि मेरा पति या तो करोड़पति होगा या वैरागी बनेगा।

पतिप्रेम—रत्नावली अपने पति तुलसीदास से विशेष प्रेम करती थी। यह पतिव्रता नारी थी। विवाह के पूर्व ही दोनों परस्पर आकर्षित थे। अतः विवाह होने पर प्रेम का अत्यन्त दृढ़ होना स्वाभाविक ही था।

नैहर (मायके का प्रेम)—रत्नावली का अपने मायके से विशेष प्रेम था। रत्नावली ही क्यों ? प्रायः सभी नारियाँ नैहर से प्रेम करती हैं। जब कभी इसके पतिदेव इसके मायके की निन्दा करते थे,' तो यह क्रोधित होकर कहती थी कि 'आपने मेरे पीहर का अपमान किया है। मैं इसे नहीं सह सकती'। पीहर का पक्ष लेना नारी-मन का नैसर्गिक-न्याय है।...पीहर का कुत्ता भी प्यारा होता है।

धन के प्रति आसक्ति—रत्नावली धन के प्रति आसक्ति रखने वाली नारी है। जब पतिदेव ने 'रामाज्ञाप्रश्न' के द्वारा सवा लाख चाँदी के सिक्के प्राप्त करने तथा उसे अनेक रूपों में विभाजित करने की बात कही, तब इसे बहुत बुरा लगा। उसने पतिदेव को समझाते हुए कहा—'लक्ष्मी कहती हैं

कि जब मैं आऊँ, तो पहले मुझे घर से निकालने की उतावली मत करो।··· दान-पुण्य करना अच्छी बात है, मर गृहस्थ को सोच-समझ कर करना चाहिए।

आदर्श पत्नी—रत्नावली आदर्श नारी तथा आदर्श पत्नी है। उसने पतिदेव को ज्ञान का उपदेश देकर चाम के प्रेम से राम के प्रेम की ओर आकृष्ट किया—'तुम चाम के लोभी हो, जीव में रमे राम के नहीं।' ज्ञान होने पर पतिदेव तुलसीदास ने इसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'रत्ने, तुम पत्नी के रूप में आज से मेरी गुरु हो।'

पश्चात्ताप—रत्नावली अपनी गलती पर पश्चात्ताप करने वाली नारी है। उसे पश्चात्ताप तब हुआ जब इसके कथन का प्रभाव पतिदेव के ऊपर हुआ और वे वैरागी हो गये। रत्नावली को पूर्ण विश्वास था कि पत्नी से इतना अधिक प्रेम करने वाला कभी वैरागी नहीं हो सकता, परन्तु इसका कारण वह स्वयं बनी। राजा भगत के साथ वह अपने स्वामी के दर्शन हेतु चित्रकूट आई, परन्तु उन्होंने माया को साथ रखना स्वीकार नहीं किया। अतः यह निराश होकर राजापुर चली आई। कुछ समय बाद जब रत्नावली को यह विदित हुआ कि अब उसके स्वामी काशी में आकर स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं, तब वह फिर राजा भगत के साथ उनके दर्शनार्थ वहाँ भी आई, परन्तु उन्होंने वहाँ भी भक्ति में बाधक समझ कर दर्शन नहीं दिया। तब रत्नावली ने कहा कि 'अब मैं आपको कष्ट देने के लिए कभी नहीं आऊँगी, परन्तु प्रार्थना है कि आप मेरी मृत्यु के पहले एक बार मुझे अवश्य दर्शन देने की कृपा करें।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि रत्नावली के चरित्र में आदर्श नारी के सभी गुण निहित हैं, जिससे यह इस उपन्यास की नायिका पद पर प्रतिष्ठित हुई।

(४) गंगाराम ज्योतिषी का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित है, उनमें गंगाराम ज्योतिषी का चरित्र आदर्श चरित्र है। ये काशी के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य शेष सनातन के पट्ट शिष्य थे। अध्ययन काल में ही तुलसीदास से इनकी मैत्री हो गई थी। ये ज्योतिष के विद्वान् थे, जिससे काशी में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। एक दिन काशीराज ने अपने राजकुमार की कुशलता के विषय में एक प्रश्न पूछा

और ठीक उत्तर देने पर एक लाख का पुरस्कार देने का वचन दिया, परन्तु उस प्रश्न के उत्तर में इनका ज्योतिषशास्त्र काम नहीं दे रहा था। ये प्रश्नोत्तर सुलझाने में प्रयत्नशील ही थे कि इसी बीच सहसा तुलसीदास का आगमन हुआ। अपने मित्र को देखकर इन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई तथा इसके साथ कार्यसिद्धि के विषय में पूर्ण विश्वास भी हो गया। तुलसीदास के पूछने पर इन्होंने अपनी समस्या सुनाई और उसी समय उन्होंने 'रामाज्ञाप्रश्न' की रचना करके बता दिया कि 'सवा पहर दिन चढ़ने पर राजकुमार सकुशल घर लौट आयेंगे।'

जब गंगाराम ज्योतिषी ने काशीराज को यह शुभ सन्देश सुनाया, तब सर्वत्र उनकी जय-जयकार होने लगी। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक इन्हें सवा लाख चाँदी के सिक्कों की एक थैली भेंट की। इन्होंने मन में सोचा कि यह कार्य तो मेरे मित्र ने किया है। अतः इस थैली पर तुलसी का पूर्ण अधिकार है। ये प्रसन्नचित्त घर आये और इन्होंने थैली मित्र को समर्पित कर दिया, परन्तु तुलसी ने कहा—'मित्र, यह सब तुम्हारा है।'

अन्त में गंगाराम के विशेष आग्रह करने पर उस धन का बँटवारा करते हुए एक लाख उन्हें तथा बारह हजार स्वयं ग्रहण करके शेष रुपये धर्मार्थं एवं हनुमान् मन्दिर-निर्माणार्थं जमा करा दिया।

अपने मित्र की प्रतिष्ठा की वृद्धि देखकर गंगाराम की प्रसन्नता की सीमा न रही। वे अत्यन्त मुदित हो गये, परन्तु एक दिन इनके जीवन में ऐसा समय उपस्थित हुआ कि अस्सी घाट पर जब तुलसी का शरीर छूटा, इनका मन विषाद से भर गया, आँखों से अश्रु छलक पड़े।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि गंगाराम ज्योतिषी का चरित्र उदारतायुक्त, शीलस्वभावसमन्वित, व्यवहार-कुशल तथा मैत्री-निर्वाहक महनीय चरित्र है।

(५) दीनबन्धु पाठक का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है, उनमें दीनबन्धु पाठक का चरित्र प्रशस्त है। ये ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित तथा हनुमान्‌जी के परम भक्त थे। पं० आत्माराम दुबे से इनकी मैत्री थी। जिस समय इनके मित्र के यहाँ रामबोला (तुलसीदास) का जन्म हुआ, उस समय इन्होंने उस

बालक की जन्मकुण्डली बनाकर उसकी ग्रहदशाओं पर विचार किया था। रत्नावली इनकी एकमात्र कन्या थी। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद इन्होंने उसका पालन-पोषण किया, उसे पुत्रवत् पढ़ाया-लिखाया तथा विदुषी बनाया, ज्योतिष का ज्ञान भी कराया। जब वह चौदह वर्ष की हो गई, तब इन्हें उसके विवाह के लिए सुयोग्य वर की चिन्ता हुई। इसी समय माता-पिता से परित्यक्त रामबोला (तुलसीदास) की प्रशंसा इनके कानों में पड़ी। ये तत्काल अपनी कन्या की कुण्डली तथा रामबोला की कुण्डली से गणना कर विचार किया और विवाह के लिए लालायित हो गये। एक दिन ऐसा संयोग उपस्थित हुआ कि राजापुर में हनुमान्‌जी की स्थापना के लिए दिन निश्चित किया गया और उस पुनीत अवसर पर वरिष्ठ पंडित के रूप में इन्हें निमंत्रित किया गया। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ, तुलसीदास से परिचय हुआ और राजा भगत की मध्यस्थता में यह विवाह निश्चित हो गया। दीनबन्धु पाठक ने तुलसीदास को अपने घर निमंत्रित किया, रत्ना के साथ परिचय हुआ और एक दिन दोनों वैवाहिक सूत्र में बँध गये। इन्होंने दान-दहेज के साथ ज्योतिष के अनेक सुन्दर-सुन्दर ग्रन्थों का भी दान किया, यद्यपि इनका भतीजा गंगेश्वर ग्रन्थों को स्वयं लेना चाहता था। अतः यह दान उसे बड़ा अनुचित प्रतीत हुआ।

दीनबन्धु पाठक महान् संयमी तथा तपस्वी थे। इनके मन में छल-कपट नहीं था, साधु विचार के थे, परन्तु इनका भतीजा गंगेश्वर इनकी सम्पत्ति लेने के लिए अपने को इनकी सन्तान कह कर यह प्रचार करने लगा कि इसकी माता के साथ इनका अनैतिक सम्बन्ध था। गंगेश्वर के कथन का इनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसके कथन में केवल इतना ही तथ्य था कि अपने भाई की मृत्यु के बाद इन्होंने गंगेश्वर का पुत्रवत् पालन-पोषण किया था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि दीनबन्धु पाठक का चरित्र महनीय और उत्तम चरित्र है।

(६) वटेश्वर का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित है, उनमें वटेश्वर का चरित्र खलनायक का चरित्र है। यह इस उपन्यास के नायक तुलसीदास के विपरीत आचरण

करता है। जिस समय विद्याध्ययन हेतु तुलसीदास काशी में आचार्य गुरु शेष सनातन के यहाँ प्रवेश किये, उसी समय से यह उनसे ईर्ष्या तथा द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया। तुलसीदास हनुमान् तथा राम के उपासक थे, परन्तु यह भूत-प्रेतों का उपासक था। यह प्रत्येक अमावास्या को श्मशान में जाकर भूत-प्रेतों की पूजा करता तथा अपनी तन्त्रविद्या की सिद्धि करता था। यह तुलसीदास को ललकारते हुए कहता था कि 'तुम्हारी हनुमान्-चालीसा श्मशान के भूत-प्रेतों के सामने व्यर्थ है। जरा श्मशान में चल कर देखो तो भूत-पिशाचों का पता चले।' परन्तु तुलसीदास को अपने हनुमान् पर विश्वास था। वे उनका नाम लेते हुए श्मशान गये, परन्तु उनका बाल बाँका न हुआ। जब वटेश्वर को इस बात का पता चला तब वह बहुत ही लज्जित हुआ, पर तुलसीदास के साथ इसका विरोध तथा ईर्ष्या कम नहीं हुई। इसे जब विदित हुआ कि रामकथा के कारण तुलसी की प्रतिष्ठा दिनों-दिन बढ़ती चली जा रही है, तो वह उन्हें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से सताने लगा। एक दिन किसी वैरागी ने किसी साहब की स्त्री का अपहरण कर लिया, जिससे कोतवाल के आदेशानुसार वैरागी तथा सन्त-महात्माओं की गिरफ्तारी होने लगी। इसी की प्रेरणा से तुलसीदास भी पकड़े गये। ऐसे अवसर पर तुलसी के भक्तों का इसके ऊपर आक्रोश होना स्वाभाविक ही था। यद्यपि हनुमान्‌जी की कृपा से तुलसीदास तथा सभी गिरफ्तार वैरागी एवं महात्मा मुक्त हो गये, परन्तु आक्रोश जनों में से किसी ने तुलसी-विरोधी वटेश्वर की हत्या कर दी, जिससे उसकी आत्मा अन्तरिक्ष में विलीन हो गई।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि वटेश्वर का चरित्र ईर्ष्या तथा विरोध समन्वित खलनायक का कलंकित चरित्र है।

(७) टोडरमल का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है, उनमें टोडरमल का चरित्र एक प्रशस्त चरित्र है। ये चार गाँवों के ठाकुर होते हुए भी निरभिमानी थे। ये गोस्वामी तुलसीदास की राम-कथा से प्रभावित थे। जिस समय काशी के अहंमानी तथा ईर्ष्यालु पण्डितों से अपमानित होकर तुलसीदास

काशी से बाहर जाने लगे, उस समय इन्होंने उनके लिए एक कुटिया बनवाई और उनकी सुरक्षा के लिए एक अखाड़ा भी निर्मित कराया, जिसमें हट्टे-कट्टे पहलवान रहते थे।

ज़ब टोडरमल को विदित हुआ कि इनके विरोधी पण्डितों ने वहाँ भी उन्हें सुखपूर्वक नहीं रहने दिया, जिससे वे भदैनी पर मेघा भगत के यहाँ चले गये। तब ये उनके दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे। टोडरमल की प्रेरणा से तुलसीदास लोलार्क कुण्ड के पास गोस्वामियों के महन्त के रिक्त स्थान पर प्रतिष्ठित होकर गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए, परन्तु यह पद उन्हें उचित नहीं प्रतीत हुआ, जिससे वे इनसे परामर्श करके पुनः अपने अस्सी स्थान पर चले आये।

तुलसीदास के विरोधियों ने देखा कि टोडरमल इनकी बड़ी सहायता कर रहे हैं। अतः वे स्वभावतः उनके विरोधी हो गये और जब गोस्वामीजी व्रजयात्रा पर मथुरा गये, उसी समय अवसर देखकर उन विरोधियों ने टोडरमल की हत्या कर दी। जब हत्या के पश्चात् गोस्वामीजी पुनः काशी आये, तब उन्हें टोडरविहीन काशी श्मशानवत् प्रतीत होने लगी।

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में ये ऐसे उत्तम व्यक्तियों में एक थे, जिनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। ऐसे व्यक्ति लोक में अपनी एक छाप छोड़ जाते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि टोडरमल एक मानव-रत्न थे।

(८) मेघा भगत का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है, उनमें मेघा भगत का चरित्र साधु चरित्र है। ये भगवान् राम के भक्त थे। अतः ये मेघा भगत के नाम से प्रसिद्ध थे। भगवान् में इनकी ऐसी निष्ठा थी कि उनके ध्यान में ये बेसुध हो जाते थे, इनकी आँखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगता था। ये आचार्य शेष सनातन में भी निष्ठा रखते थे। यही कारण था कि उनके आश्रम में विद्याध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को कभी-कभी भोजन के लिए निमंत्रित करते थे। इसी अवसर पर तुलसीदास से इनका परिचय हुआ, क्योंकि वे भगवान् के भक्त थे और भजन भी गाते थे।

मेघा भगत सदैव अपने आश्रम पर भजन-कीर्तन का आयोजन करते थे।

वहाँ मोहिनी नाम की एक सुन्दरी गायिका भी भजन गाती थी, पर तुलसी-दास के भजन के समक्ष उसका भजन फीका पड़ जाता था।

तुलसी से प्रभावित होकर मेधा भगत भक्तमण्डली में कहा करते थे कि 'तुलसी पृथ्वीवासियों के लिए स्वर्ग से आया हुआ एक प्रसाद है।'

मेधा भगत ने लोककल्याण के लिए एक कार्य और किया। वह है तुलसी के रामचरितमानस के आधार पर रामलीला का श्रीगणेश।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि मेधा भगत का चरित्र परोपकारी संत का चरित्र है, जो छल-कपट से दूर अभिमान से परे तथा भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत है।

(९) नरहरि बाबा का चरित्र-चित्रण

श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में जिन पुरुष-पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है, उनमें नरहरि बाबा का चरित्र प्रशस्त साधु चरित्र है। ये सन्त प्रकृति के बड़े ही उदार व्यक्ति हैं।

ये सूकर क्षेत्र (वाराह क्षेत्र) के निवासी थे। वहाँ एक हनुमान्‌जी का मन्दिर था, जिनकी ये नित्य पूजा किया किरते थे। आस-पास के लोग भी वहाँ पूजा करने आते तथा हनुमान्‌जी को चना-गुड़ का प्रसाद चढ़ाते थे, जिससे वहाँ बन्दरों की संख्या बहुत अधिक थी। इसी स्थान पर माता-पिता से परित्यक्त बालक 'राम-बोला' ने नरहरि बाबा का दर्शन किया। होनहार बालक देखकर इन्होंने बालक को आश्रय दिया और यहीं राम की कथा सुनाई। जब रामबोला की अवस्था यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हुई, तब ये बालक को साथ लेकर अयोध्या में अपने परिचित महन्त सियारामशरण दास के निकट आये और यहीं रामबोला का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। उस दिन जब बालक भगवान् राम के निकट प्रणाम करने गया, तब भगवान् के ऊपर से तुलसी का एक पत्र इसके शिर पर गिर पड़ा। उसी समय गुरु नरहरिदास ने रामबोला का नाम तुलसीदास रखा। तत्पश्चात् विद्वान् बनाने की अभिलाषा से ये बालक को साथ लेकर काशी में आचार्य शेष सनातन के यहाँ ले आये, जहाँ अनेक विद्यार्थी गुरु से विद्यार्जन करके प्रकाण्ड विद्वान् होते थे।

इस प्रकार हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि बाबा नरहरिदास का चरित्र मूल रूप में हनुमान्भक्ति एवं रामभक्ति से समन्वित परोपकारी सन्त महात्मा का महनीय चरित्र है।

संस्कृति-संगम

निबन्धों का सारांश

(१) संस्कार और संस्कृति

श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित निबन्धों में 'संस्कार और संस्कृति' नामक निबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके भीतर विदुषी लेखिका ने संस्कार तथा संस्कृति के ऊपर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। लेखिका का कथन है कि देश-विदेश में विकसित होने वाला मनुष्य न केवल पार्थिव अस्तित्व ही प्राप्त करता है, प्रत्युत उसे देश-विदेश के परिवेश में प्राप्त होने वाली रागात्मक सत्ता भी अनायास ही स्वाभाविक रूप में मिल जाती है।

मानव-जाति की इन मूल प्रवृत्तियों के लिए संस्कृत कवि भवभूति का निम्न कथन अत्यन्त समीचीन है—

> 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
> भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
> आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
> अम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्' ॥

तात्पर्य यह है कि एक करुण रस ही निमित्त भेद से भिन्न-भिन्न मनोविकारों में परिवर्तित हो जाता है, जिस प्रकार आवर्त, बुद्बुद, तरंग आदि में परिवर्तित जल, जल ही रहता है।

इसी प्रकार मानव के निमित्त भेद देश-काल आदि से उत्पन्न भिन्नता एक मानव को या मानव-समूह को भिन्न-भिन्न नहीं होने देती, बल्कि उसे विशेष व्यक्तित्व देकर सामान्य सत्य के लिए प्रमाण प्रस्तुत करती है।

मानव-समूह को तात्त्विक रूप से समझने के लिए सबसे प्रमुख सुमधुर तत्त्व उसका साहित्य है। साहित्य में मनुष्य का अन्तर्जगत् बाह्यजगत् में आकर एक निश्चित सीमा में बँध जाता है एवं सीमित वाह्यजगत् अन्तर्जगत् के विस्तार से मुक्त होकर नवीन रहस्यमयता को प्राप्त होता है।

धारा के साथ चलने वाली लहर अपने लक्ष्य की ओर नवीन रूप में बढ़ती जाती है, परन्तु उससे अलग होने पर वह अपना अस्तित्व खो देती है।

साहित्य हमारे जीवन को ऐसे एकाकी अन्त से बचाकर उसे जीवन के निरंतर गतिशील प्रवाह में मिलने का सम्बल देता है।

जहाँ तक परिवर्तन का प्रश्न है; मनुष्य के पार्थिव परिवेश में भी निरंतर परिवर्तन होता रहता है और उसके जीवन में भी। जहाँ किसी युग में ऊँचे पर्वत थे, वहीं आज गहरा समुद्र है और जहाँ कभी गहरा समुद्र था, वहीं आज पर्वत है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ऊँचे पर्वत-शिखर पर जल हिम बनकर शिलाखण्डों के साथ पाषाण रूप में अनन्त काल तक स्थिर भी रह सकता है और अपनी तरलता के साथ प्रपात और प्रपात से नदी बन कर निरन्तर प्रवाहित भी होता रह सकता है, उसी प्रकार मानव-संस्कृति भी एक विन्दु से स्थिर तथा प्रवाहित होती रह सकती है।

मानव संस्कृति का मूल वेद है, जिससे महाभारत, पुराण तथा रामायण को प्रेरणा मिली है। महाभारत के विषय में कहा गया है—

'यन्न भारते, तन्न भारते।'

यह अनुभव-सिद्ध है कि भाषा की परम्परा और पुस्तकीय ज्ञान का क्रम टूट जाने पर भी मनुष्य की बुद्धि और उसका हृदय पूर्व-संस्कारों का दायित्व सुरक्षित रखने में समर्थ है। संस्कृति इसी रक्षा का पर्याय है, जिससे मनुष्य महान् बनता है।

विदुषी लेखिका द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि की दृष्टि से एक प्रशस्त सांस्कृतिक निबन्ध है।

(२) मानव धर्म

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित निबन्धों में 'मानव धर्म' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इस निबन्ध के अन्तर्गत विद्वान् लेखक ने मानव धर्म के ऊपर अपना विचार व्यक्त किया है। धर्म के विषय में महाभारत में कहा गया है कि जो धर्म किसी अन्य धर्म के विरुद्ध जान पड़ता हो, वह धर्म नहीं है। जो धर्म अविरोधी होता है, वस्तुतः वही धर्म है—

'धर्मो यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मतः।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिसत्तम'॥

इसका कारण यह है कि धर्म के बाह्य रूप किसी एक ऐसे मानवकल्याण-

कारी तत्त्व के ऊपर प्रतिष्ठित होते हैं, जो स्वयं सदा एक रस रहने पर भी देश और काल के अनुसार नये-नये रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार धर्म के नाम पर अनेक प्राणहीन रूढ़ियाँ और तत्त्व दृष्टि रहित अनेक आचार-परम्पराएँ चल पड़ती हैं।

जब हम कहते हैं कि वर्तमान युग में धर्म को नया रूप ग्रहण करना है, तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यह विज्ञान का युग है; इसमें नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। अब मानव के जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य परलोकसाधन तथा परलोक में सुखी होना नहीं है, बल्कि अपने कार्य-कलापों से इसी लोक में सुखी होना है। यह सत्य है कि इस वर्तमान काल में भी मानव में प्राचीन काल के [illegible] काट की ओछी बर्बरता मौजूद है। वह आज तलवार का समाधान मोक्ष है, जिसका उपा[illegible] [illegible] पूर्ण करना चाहता है, जिस लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की [illegible] [illegible] मतलब सिद्ध कर[illegible] [illegible]निबन्ध है।

(५) योग विज्ञान और मनुष्य

डॉ० कर्णसिंह द्वारा लिखित निबन्धों में 'योग-विज्ञान और मनुष्य' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने योग-विज्ञान तथा मनुष्य के सम्बन्ध का निरूपण किया है। लेखक का कथन है आज का मनुष्य ऐसी स्थिति में पहुँच चुका है कि उसने अपनी बुद्धि के विकास से चरम अवस्था प्राप्त कर ली है। आज के विज्ञान के कारण उसने चाँद पर अवरोहण किया, वहाँ के प्रस्तर खण्ड को पृथ्वी पर ले आया। दूसरी ओर आज का डाक्टर एक शरीर के हृदय को दूसरे के शरीर में लगाने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर रहा है। परन्तु अभी भी आज के मनुष्य के सामने अनेक समस्याएँ हैं, जिनका समाधान नहीं हो पाया है। इन समस्याओं के अनेक कारण हैं—ऐतिहासिक कारण, भौगोलिक कारण, आर्थिक कारण, सामाजिक कारण, राजनैतिक कारण तथा विचारधारात्मक कारण। लेकिन सच पूछा जाय तो मानव की समस्या का मूल सम्भवतः स्वयं उसकी चेतना है। शरीर, मन और आत्मा से मिलकर बना हुआ मानव मूलतः अपनी ही चेतना की समस्याओं से पीड़ित है। वही उसकी सारी समस्याओं की जड़ है। मनुष्य के भीतर कुछ ऐसे गुण हैं, जो अन्य जीवों में नहीं है।

मनुष्य योग और विज्ञान के द्वारा सब कुछ करने में समर्थ है, पर अन्य जीव नहीं, योग की अनेक परिभाषाएँ हैं—

विकास कर रही है। इससे मनुष्य एक-दूसरे के निकट आता जा रहा है। आज सभी देशों की धार्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन सभी लोग अत्यन्त गंभीरता के साथ कर रहे हैं। अब मनुष्य संकीर्णता से ऊपर उठ रहा है।

बड़े-बड़े मनीषियों की घोषणा है कि मनुष्य एक है। अतः मूल मानव-धर्म एक ही है। यह इस युग की आवश्यकता नहीं है, परन्तु युग का अनुभूत सत्य है।

इस युग में समन्वय की बड़ी चर्चा है। कुछ लोग धर्मों के नाम पर चलने वाले आचारों को एक साथ जोड़ने को समन्वय [illegible] भी अच्छा, एकादशी भी अच्छी, सलाम [illegible] स्थिर तथा प्रवाहित होती समन्वय प्रारम्भ है, परन्तु [illegible] मूल वेद है, जिससे महाभारत, पुराण तथा रामायण को प्रेरणा मिली है। महाभारत के विषय में कहा गया है—

'यन्न भारते, तन्न भारते।'

यह अनुभव-सिद्ध है कि भाषा की परम्परा और पुस्तकीय ज्ञान का क्रम टूट जाने पर भी मनुष्य की बुद्धि और उसका हृदय पूर्व-संस्कारों का दायित्व सुरक्षित रखने में समर्थ है। संस्कृति इसी रक्षा का पर्याय है, जिससे मनुष्य महान् बनता है।

विदुषी लेखिका द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि की दृष्टि से एक प्रशस्त सांस्कृतिक निबन्ध है।

(२) मानव धर्म

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित निबन्धों में 'मानव धर्म' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इस निबन्ध के अन्तर्गत विद्वान् लेखक ने मानव धर्म के ऊपर अपना विचार व्यक्त किया है। धर्म के विषय में महाभारत में कहा गया है कि जो धर्म किसी अन्य धर्म के विरुद्ध जान पड़ता हो, वह धर्म नहीं है। जो धर्म अविरोधी होता है, वस्तुतः वही धर्म है—

'धर्मो यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मतः।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिसत्तम'॥

इसका कारण यह है कि धर्म के बाह्य रूप किसी एक ऐसे मानवकल्याण-

उसका आगे का जन्म भी सुन्दर बने। अच्छे कर्म करते रहने से जन्म-मरण का बन्धन छूट जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

उपनिषदों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो परस्पर विरोधी हैं। इसी से तो अनेकवाद उत्पन्न हो गये।

उपनिषदों में आकाश को सर्वव्यापक कहा गया है, वह सर्वत्र है। जब कुम्भकार कोई घड़ा बनाता है तो आकाश का एक खण्ड उस घड़े में भी व्याप्त हो जाता है। वह घटाकाश कहा जाता है। जब घड़ा फूट जाता है, तब उसमें बँधा हुआ आकाश बड़े आकाश में मिल जाता है।

मनुष्य की असली समस्या जन्म-मरण की समस्या है और इस समस्या का समाधान मोक्ष है, जिसका उपाय उपनिषदों में है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से उत्तम सांस्कृतिक निबन्ध है।

(५) योग विज्ञान और मनुष्य

डॉ० कर्णसिंह द्वारा लिखित निबन्धों में 'योग-विज्ञान और मनुष्य' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने योग-विज्ञान तथा मनुष्य के सम्बन्ध का निरूपण किया है। लेखक का कथन है आज का मनुष्य ऐसी स्थिति में पहुँच चुका है कि उसने अपनी बुद्धि के विकास से चरम अवस्था प्राप्त कर ली है। आज के विज्ञान के कारण उसने चाँद पर अवरोहण किया, वहाँ के प्रस्तर खण्ड को पृथ्वी पर ले आया। दूसरी ओर आज का डाक्टर एक शरीर के हृदय को दूसरे के शरीर में लगाने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर रहा है। परन्तु अभी भी आज के मनुष्य के सामने अनेक समस्याएँ हैं, जिनका समाधान नहीं हो पाया है। इन समस्याओं के अनेक कारण हैं—ऐतिहासिक कारण, भौगोलिक कारण, आर्थिक कारण, सामाजिक कारण, राजनैतिक कारण तथा विचारधारात्मक कारण। लेकिन सच पूछा जाय तो मानव की समस्या का मूल सम्भवतः स्वयं उसकी चेतना है। शरीर, मन और आत्मा से मिलकर बना हुआ मानव मूलतः अपनी ही चेतना की समस्याओं से पीड़ित है। वही उसकी सारी समस्याओं की जड़ है। मनुष्य के भीतर कुछ ऐसे गुण हैं, जो अन्य जीवों में नहीं है।

मनुष्य योग और विज्ञान के द्वारा सब कुछ करने में समर्थ है, पर अन्य जीव नहीं, योग की अनेक परिभाषाएँ हैं—

१. 'समन्वयं योग उच्यते।'
अर्थात् सन्तुलन और सामञ्जस्य ही योग है।
२. 'योगः कर्मसु कौशलम्।'
अर्थात् कर्म का कौशल ही योग है।
३. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'
अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध करना ही योग है।

योग तथा योगासनों के द्वारा हम अनेक मानसिक रोगों तथा शारीरिक रोगों पर विजय पा सकते हैं। विज्ञान के साथ भी इसका सामञ्जस्य अनिवार्य है, क्योंकि दोनों ही जीवन्त विधाएँ हैं। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से उत्तम सांस्कृतिक निबन्ध है।

(६) शिव-मूर्तियाँ

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित निबन्धों में 'शिव-मूर्तियाँ' नामक निबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वान् लेखक का कथन है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीन देवता भारतीय धर्म की मूल भित्ति हैं। ये तीनों तीन गुणों के प्रतीक हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार यह प्राकृतिक जगत् तीन गुणों की रचना है। इनमें सतोगुण को विष्णु, रजोगुण को ब्रह्मा तथा तमोगुण को शिव कहते हैं। ब्रह्मा सृष्टि की रचना, विष्णु उनका पालन तथा शिव उसका संहार करते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जितना विश्व है, वह जन्म, स्थिति और मृत्यु के अधीन है।

यद्यपि यह देवता पृथक्-पृथक् हैं, तथापि ये तीनों एक ही मूल शक्ति के तीन रूप हैं। नाममात्र के लिए ये पृथक् हैं, वस्तुतः प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में प्रधान हैं।

मूल शक्ति तो एक ही है और प्रत्येक देवता उस मूल शक्ति की प्रेरणा से अपने-अपने कार्य में रत हैं।

इस विश्व में केवल दो ही तत्त्व हैं। एक को देव कहते हैं और दूसरे को भूत अर्थात् असुर। इन दोनों तत्त्वों में संग्राम होता रहता है। एक सत् पक्ष है, दूसरा असत् पक्ष। इसी बात को लेकर देवासुर संग्राम का इतिहास निर्मित है।

पुराणों में इस प्रकार के अनेक देवासुर संग्राम का वर्णन है। उनके आधार पर ही भारतीय मूर्तिकला का विधान किया गया है। इस कला के अनुसार शिव की दो प्रकार की मूर्तियाँ पाई जाती हैं—लिंगरूप में तथा शरीर-रूप में। लिंगरूप की मूर्तियाँ निर्गुण कही जाती हैं, शरीररूप की मूर्तियाँ सगुण। एक अव्यक्त है, दूसरी व्यक्त। लिंग पुराण में अव्यक्त मूर्ति को लिंग मूर्ति कहा गया है—'अव्यक्तं लिंगमुच्यते।'

विश्व में पुरुष और प्रकृति दो हैं। जो पुरुष है, वही शिव हैं और जो प्रकृति है, वह उमा है। अर्द्धनारीश्वर के रूप में मिली हुई तथा पृथक्-पृथक् भी शिव और उमा की मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

शिव की जो मूर्तियाँ नन्दीश्वर के साथ विख्यात हैं, उन्हें नन्दिकेश्वर शिव कहते हैं। इस प्रकार कार्य विशेष के कारण शिव की मूर्तियों के अनेक नाम हैं।

त्रिपुरासुर के वध के कारण त्रिपुरान्तक मूर्ति या त्रिपुरारि मूर्ति, अन्धकासुर के वध के कारण अन्धकासुर संहार मूर्ति, दक्षमख (यज्ञ) के संहार के कारण मखान्तक मूर्ति, गजासुर के संहार के कारण गजासुर संहार शिवमूर्ति, कामदेव को भस्म करने के कारण कामान्तक शिवमूर्ति, विष-पान करने से कंठ के नीले होने के कारण नीलकंठ शिवमूर्ति, काल के भी काल होने के कारण कालान्तक शिवमूर्ति तथा भक्तों के दक्षिण (अनुकूल) होने के कारण दक्षिणामूर्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मध्य-युग तथा गुप्त-युग के शिल्पियों ने बड़ी ही सुन्दर कलाओं के द्वारा इन मूर्तियों का निर्माण किया है। ताण्डव नृत्य करते हुए भी शिव की अनेक मूर्तियाँ हैं, जो उस समय की कला की द्योतक हैं।

वास्तव में शिव भगवान् हैं, देवाधिदेव हैं, महादेव हैं। वे एक रुद्र तथा असंख्य रुद्रों के रूप में विभूषित हैं। वेदों तथा पुराणों में उनके अनेक गुणों की प्रशंसा है, फिर भी वेद-पुराण उनकी पूर्ण प्रशंसा करने में असमर्थ हैं।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से एक प्रशस्त सांस्कृतिक निबन्ध है।

(७) काव्य-साहित्य

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा लिखित निबन्धों में 'काव्य-साहित्य' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक का कथन है कि मैं यहाँ काव्य

साहित्य की चर्चा नहीं करूँगा, इसकी चर्चा बहुत हो चुकी है। अतः मैं यहाँ रामायण-महाभारत की कुछ चर्चा कर रहा हूँ। वेद सभी विद्याओं का मूल है। अतः सभी ग्रन्थों, काव्यों, साहित्यों का भी मूल है। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण आदिकाव्य के नाम से प्रसिद्ध है और उसके रचयिता आदिकवि कहे जाते हैं। अनुमानतः इस काव्य की रचना ईसवी सन् से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व की है। यह रामायण परवर्ती कवियों के लिए प्रेरणा स्रोत है। चाहे कवि हों, चाहे नाटककार; सभी ने इससे प्रेरणा प्राप्त की है और आज भी प्राप्त कर रहे हैं। संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों तथा नाटककारों ने इससे प्रेरित होकर अपने काव्यों का निर्माण किया; उनमें कालिदास, भास, भवभूति मुख्य हैं। रामायण के समान ही व्यासकृत महाभारत भी कवियों की प्रेरणा का स्रोत रहा है तथा अब भी है।

वास्तव में ये दोनों ही ग्रन्थरत्न भारत के राष्ट्रीय गौरव के केन्द्रबिन्दु हैं, परन्तु इन दोनों के विषय में एक प्रश्न उठता है कि इन दोनों में प्राचीन कौन है—रामायण या महाभारत ?

इस प्रश्न का समाधान अनेक प्रकार से किया जाता है। इन दोनों ग्रंथों में भगवान् के अवतार से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया गया है। रामायण में राम के अवतार का वर्णन है और महाभारत में कृष्ण के अवतार का। राम का अवतार पहले हुआ और कृष्ण का अवतार बाद में। रामायण उत्तरकालीन समाज के कवि की रचना है और महाभारत पूर्वकालीन समाज के कवि की। ये दोनों ग्रन्थ महान् हैं। रामायण रामकथा काव्य है, महाभारत इतिहास है। इनमें अनेक कथाओं का वर्णन है। इन्हीं को आधार मानकर संस्कृत तथा बौद्ध-साहित्य में अनेक रचनाएँ हुईं। महान् वैयाकरण पाणिनि ने 'जाम्बवती विजय' नामक काव्य लिखा। यद्यपि यह काव्य पूर्णरूप में उपलब्ध नहीं होता, पर इसके कुछ सुभाषित श्लोक मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त पाणिनि का एक और काव्य है—'पाताल विजय।' महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक तथा मेघदूत, कुमारसम्भव एवं रघुवंश नामक काव्य बड़े ही प्रसिद्ध हुए। इनके काव्यों की प्रशंसा करते हुए बड़े-बड़े मनीषी भी नहीं अघाते। इन काव्यों के अतिरिक्त इनके दो नाटक और हैं—मालविकाग्निमित्र तथा विक्रमोर्वशीय। अश्वघोष ने भी दो काव्य लिखे हैं—बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द।

इसी प्रकार महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय, कुमारदास ने जानकीहरण, भट्टि ने भट्टिकाव्य, माघ ने शिशुपालवध, कवि हर्ष ने नैषधीयचरितं, कवि कल्हण ने राजतरंगिणी नामक काव्यों की रचना की।

इन कवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवि भी हुए हैं, जिन्होंने कोई विशेष काव्य न लिखकर शतक के रूप में रचनाएँ कीं। यथा—भर्तृहरिकृत शृंगार-शतक, वैराग्यशतक, नीतिशतक। गद्य शैली में भी लेखकों ने अनेक उपाख्यान लिखे। यथा—बाणभट्ट द्वारा लिखित कादम्बरी तथा हर्षचरित।

इसी प्रकार अनेक बृहत्कथाएँ भी लिखी गईं। यथा—कथासरित्सागर, बृहत्कथामञ्जरी।

कहानियों का संग्रह भी हुआ। यथा—पञ्चतन्त्र।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव, तथा शैली समस्त दृष्टियों से प्रशस्त एक सांस्कृतिक निबन्ध है।

(८) रामकथा की प्राचीनता

श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा लिखित निबन्धों में 'रामकथा की प्राचीनता' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इस निबन्ध के भीतर विद्वान् लेखक ने भगवान् राम की कथा की प्राचीनता के विषय में अपना विचार प्रकट किया है। लेखक का कथन है कि राम की कथा कितनी पुरानी है—इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर अभी प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु इतना सत्य है कि बुद्ध और महावीर के समय में राम के प्रति लोगों की निष्ठा थी। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि बुद्ध-महावीर दोनों से बहुत पहले राम का आदर होता रहा होगा। विचित्र बात यह है कि वेद में रामकथा के अनेक पात्रों का वर्णन हैं—इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, अश्वपति, कैकेयी, जनक, सीता। परन्तु विद्वानों ने अब तक यह स्वीकार नहीं किया है कि ये नाम सचमुच रामकथा के पात्रों के ही हैं।

रामकथा के पात्रों के सम्बन्ध में विद्वानों ने बहुत अन्वेषण किया है। यथा—खेत में जो सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी थीं, वे ही बाद में अयोनिजा कन्या बन गईं, जिन्हें जनक ने हल चलाते हुए खेत में पाया, परन्तु वास्तव में यह सब अनुमान है।

महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी तपस्या के बल से दाशरथि राम की कथा रामायण में अंकित की। इसमें तीन स्थानों की कथा है—अयोध्या, किष्किन्धा

तथा लंका। इन स्थानों के प्रधान पात्र तीन हैं—राम, सुग्रीव तथा रावण। इन तीन पात्रों के चरित्र तीन संस्कृतियों से सम्बन्धित हैं—नरकुल, वानर कुल-तथा निशिचर कुल। आदिकवि ने अपने आदिकाव्य में इन्हीं स्थानों, पात्रों तथा संस्कृतियों का चित्रण करते हुए उसे कथा के माध्यम से रामायण काव्य का रूप दिया है, जो रामचरित के रूप में प्रतिष्ठित है। आज रामकथा जितनी प्रिय है, लोक में कोई दूसरी कथा नहीं। इसी कारण समस्त भारत की संस्कृति राममयी बन गई और जनजीवन राम के रंग में रंग गया।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से उत्तम सांस्कृतिक निबन्ध है।

(९) श्रीमद्भगवद्गीता पर्व

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित निबन्धों में 'श्रीमद्भगवद्-गीतापर्व' नामक निबन्ध का विशेष स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने गीता की महिमा तथा इससे सम्बन्धित अर्जुन के मोहादि का वर्णन किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्मपर्व का सुप्रसिद्ध अंश है। इसमें १८ अध्याय हैं। इसके आरम्भ और अन्त में धृतराष्ट्र और संजय के संवाद-रूप में कुछ श्लोक हैं तथा शेष कृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में हैं।

भगवद्गीता के समान सद्ग्रन्थ भारतीय साहित्य में कोई ग्रन्थ नहीं। यह मनुष्य के जीवन-निर्माण के लिए एक उपदेशात्मक सद्ग्रन्थ है। इसमें ज्ञान, कर्म तथा भक्ति की त्रिवेणी है। इसकी शैली संवाद शैली है, जो बहुत ही मनोहर है। इसकी प्रशंसा जितनी भी की जाय, वह थोड़ी है। यह भगवान् की वाणी है, जो मोहग्रस्त अर्जुन के मोह को छुड़ाने वाली है। इसमें कृष्ण के रूप में अनुपम गुरु और अर्जुन के रूप में अनुपम शिष्य की झाँकी मिलती है।

गीता मानव-जीवन की समस्याओं का समाधान करने वाला ऐसा ग्रंथ रत्न है, जिसकी तुलना दर्शन, धर्म, अध्यात्म तथा नीति किसी के साथ नहीं की जा सकती। वेद तथा उपनिषद् जैसे महान् ग्रन्थ गीता के ही फल हैं।

महाभारत-युद्ध के पूर्व अपने ही परिजनों-सम्बन्धियों को युद्ध के लिए उद्यत देखकर पाण्डव-वीर अर्जुन का मन विषाद से भर गया। उन्होंने भगवान् कृष्ण से कहा कि 'हे कृष्ण! मुझे राज्य नहीं चाहिए, सुख नहीं चाहिए, भोग

का जीवन नहीं चाहिए। यदि स्वजनों के वध से ये चीजें मिलने वाली हों, तो पृथ्वी क्या त्रिलोकी का राज्य भी मुझे नहीं चाहिए। ये मुझे भले ही मारें, परन्तु मैं अपने इन स्वजनों को कदापि नहीं मारूँगा। यदि यह कहा जाय कि ये अधर्म का पक्ष लेकर आये हैं, तो मेरा यह कथन है कि सचमुच इन्होंने हम भाइयों के साथ और द्रौपदी के साथ घोर आततायी के काम किया है, फिर भी यह सब जानते हुए भी मैं इनका वध नहीं करूँगा। ये अन्धे हैं, इन्हें अपना पाप नहीं दिखलाई पड़ता। जिनकी आँखें हैं, उन्हें ही सच्चाई दिखाई देती है, अन्धों को सत्य नहीं दृष्टिगत होता। मुझे विवेक का नेत्र है। अतः मैं भले-बुरे की पहचान क्यों न करूँ? मैं कुल के क्षय करने वाले इस पाप को नहीं देख सकूँगा। भारतीय संस्कृति में कुल ही जीवन का मूलाधार है। यह युद्ध महान् पाप है। मेरा हित इसी में है कि मैं युद्ध न करूँ, भले ही कौरव मुझे मार डालें। मैं आपका शिष्य हूँ। अतः आप मेरे कल्याण के मार्ग का उपदेश दें।'

ऐसा कहकर अर्जुन ने अपना धनुष-बाण रख दिया। तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण ने अपनी मधुर वाणी में उन्हें कर्म का उपदेश दिया।

भगवद्गीता का प्रथम अध्याय श्रीकृष्णार्जुन संवाद में अर्जुन-विषाद योग है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'ओम् तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूप-निषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' लिखा हुआ है। इसमें ओम् तत्सत् की व्याख्या यह है कि इस महान् शास्त्र का देवता या चिन्मय तत्त्व परमात्मा या ईश्वर है। वही गीता का प्राण, श्वास-प्रश्वास या जीवन है। ईश्वर के लिए ही ओम्, तत् और सत् इन तीन शब्दों का प्रयोग होता है। यही भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। जीव की समस्यायें दो प्रकार की हैं—एक भगवान के साथ दूसरी विश्व के साथ। इन दोनों का समाधान ज्ञान और कर्म के द्वारा होता है।

भारतीय दृष्टिकोण से ये दो सूत्र धारणीय हैं—

१. ब्रह्म = ईश्वर = नारायण = कृष्ण = भगवान्।

२. जीव = मनुष्य = नर = अर्जुन = भगवान् का अंश।

गीता ज्ञानरूपी समाधान की दृष्टि से ब्रह्मविद्या है और वही कर्मरूपी समाधान की दृष्टि से योगशास्त्र है। गीता में योग की दो परिभाषाएँ हैं। एक ज्ञानयोग या बुद्धियोग है, दूसरा कर्मयोग या केवल योग है।

ज्ञान योग को समत्व योग कहा गया है—'समत्व योग उच्यते।' कर्म की दृष्टि से कर्मों में कौशल या प्रवीण युक्ति को योग कहा गया है—'योगः कर्मसु कौशलम्।' ये दोनों योग भले ही पृथक्-पृथक् जाने जाते हैं, परन्तु गीता की दृष्टि में दोनों का समन्वय ही जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक माना जाता है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से सांस्कृतिक प्रशस्त निबन्ध हैं।

(१०) मूर्तिकला और स्थापत्य

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा लिखित निबन्धों में 'मूर्तिकला और स्थापत्य' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसमें विद्वान् लेखक ने मूर्तिकला तथा स्थापत्य के ऊपर सुन्दर प्रकाश डाला है। विद्वान् लेखक का कथन है कि मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य और संगीत—ये चारों मुख्य कलाएँ हैं। भारतवर्ष में, जहाँ की अधिकांश जनता आज भी मूर्तिपूजक है, वह किसी न किसी रूप में ईश्वराधन के लिए मूर्तियों की शरण लेती है। मूर्तिकला का उद्‌भव तथा उन्नति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बहुत प्राचीनकाल से मूर्तियों के नमूने मिलते हैं—सोने की मूर्तियाँ, चाँदी की मूर्तियाँ, ताँबा, काँसा, पीतल तथा अष्ट धातु की मूर्तियाँ, जिन्हें देखकर कलाकार आज भी चकित हो जाते हैं।

मूर्ति-निर्माण में मनुष्य के मुख्यतः दो उद्देश्य दृष्टिगत होते हैं। प्रथम यह है कि किसी स्मृति को या अतीत को जीवित बनाये रखना। द्वितीय यह है कि अमूर्त को मूर्त रूप देना या अव्यक्त को व्यक्त करना। मूर्तिकला के अन्तर्गत ऐतिहासिक मूर्तियाँ प्रथम कोटि में आती है और धार्मिक एवं कलात्मक मूर्तियाँ द्वितीय कोटि में।

सबसे पुरानी मूर्तियाँ मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के प्राचीन नगरों में खुदाई के समय प्राप्त हुई हैं। जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनके शरीर पर गहने भी हैं।

इसी प्रकार शैशुनाक वंश की भी मूर्तियाँ मिली हैं। उनमें सबसे प्राचीन मूर्ति अजातशत्रु की है। यह मूर्ति पटना के आस-पास खुदाई में मिली थी। यह मूर्ति कलकत्ता के संग्रहालय में संगृहीत है।

साँची और भरहुत की मूर्तियाँ भी मिली हैं। शैशुनाक वंश के बाद मगध में नन्दवंश का राज्य हुआ। इसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य का, जिसने मौर्यवंश की

स्थापना की। चाणक्य इसी राजा का मंत्री था। इसने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि 'उस समय शिल्पियों की कमी नहीं थी। बढ़ई, कर्मार, चित्रकार, चर्मकार—सभी कला में निपुण थे।'

चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज भी आया था। इसने वहाँ की कला की खूब प्रशंसा की है। वहाँ का प्रासाद (महल) नक्काशियों से युक्त था। स्थापत्य कला उच्चकोटि की थी। उस समय के भवन कलायुक्त थे। मौर्यकाल में वास्तुकला चरमसीमा पर थी।

मौर्यकाल के प्रसिद्ध राजा अशोक के समय भी यह कला विकसित थी। शिलास्तम्भ के सन्देश बड़े ही उपयोगी थे। मौर्यकाल से आजतक यह कला विस्फुरित होती रही है। विद्वानों ने भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम के अनेक स्थानों के नमूनों का बहुत ही बारीकी के साथ अध्ययन किया है। बुद्धदेव की अनेक मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में अनेक स्थानों पर पाई जाती हैं।

महाराष्ट्र के बेरूल नामक स्थान में, जिसे एलोरा कहते हैं, एक पहाड़ी को काटकर मन्दिरों में परिवर्तित किया गया है। मन्दिरों की संख्या ३० से भी अधिक है। वहाँ चूने-मसाले का नामो-निशान नहीं हैं। वे मन्दिर ब्राह्मण मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। बौद्ध तथा जैन मन्दिर भी हैं। यहाँ के सभी मन्दिरों में कैलाश नामक ब्राह्मण मन्दिर सबसे विशाल और सुन्दर है। यह आठवीं सदी की रचना है।

यहाँ एक ऐसा भी मंदिर है, जहाँ रावण कैलाश को उठा रहा है और भयत्रस्त पार्वती शिव के विशाल भुजदण्डों का आश्रय ले रही हैं, उनकी सखियाँ भाग रही हैं, किन्तु भगवान् शिव अचल एवं अटल हैं और अपने चरण से कैलाश को दबाकर रावण का मान मर्दन कर रहे हैं।

तक्षशिला एवं विजयानगरम् के भग्नावशेष की कलाएँ भी दर्शनीय हैं।

यहाँ उसी समय का वर्णन है, जो हिन्दुओं के समय का है, क्योंकि यह एक सांस्कृतिक निबन्ध है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टियों से युक्त प्रशस्त निबन्ध है।

(११) विदेशों में भारतीय संस्कृति

श्रीभगवतशरण उपाध्याय द्वारा लिखित निबन्धों में 'विदेशों में भारतीय संस्कृति' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इस निबन्ध के अन्तर्गत विद्वान्

लेखक ने अपने अनुभव से विदेशों में प्रसृत भारतीय संस्कृति पर अच्छा प्रकाश डाला है। विद्वान् लेखक का कथन है कि विदेशी विश्वविद्यालयों तथा सरकारी निमंत्रणों से मुझे अनेक विश्वविद्यालयों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने अमेरिका तथा यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों को देखा, वहाँ के विद्वानों से बातें भी करने का अवसर मिला। इस सिलसिले में मैंने अनेक देशों का भ्रमण किया—संयुक्तराष्ट्र, कनाडा, इंग्लैण्ड, नारवा, स्वीडेन, डेनमार्क, हालैण्ड, वेल्जियम, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड, इटली, यूगोस्लाविया, ग्रीस तथा मिस्र आदि।

निमंत्रणों का आशय यह था कि वहाँ के विद्वान् मुझसे भारतीय संस्कृति के विषय में कुछ सुनें।

मुझे वहाँ जाने में बहुत लाभ हुआ। मैंने घूम-घूम कर वहाँ स्थापित भारतीय संस्कृति पर अनुसंधान करने वाली संस्थाओं को भी देखा, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

भारतीय संस्कृति पर काम करने वाली संस्थाओं का विदेशों में जाल-सा बिछा हुआ है।

मैंने विशेषरूप से वहाँ तीन प्रकार की संस्थाओं से सम्पर्क किया—विश्व विद्यालय, संग्रहालय तथा विद्वत् परिषद्। विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं तथा संस्कृति का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है।

येल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एडजर्टन अच्छा काम कर रहे हैं। शिकागो और बर्कले आदि में भी संस्कृति के अध्ययन का अच्छा प्रबन्ध हैं। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज का कार्य भी सराहनीय है। नारवे के ओस्लो विश्वविद्यालय में भी इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य हो रहा है। वहाँ के प्रोफेसर मार्गेनस्टर्ने हिन्दी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं। जब उनसे मुलाकात हुई, तो उन्होंने हिन्दी में ही बातें कीं। मुझे उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्टाकहोम के पास स्वीडन विश्वविद्यालय है। यहाँ भारतीय विद्याओं का अध्ययन होता है। इसके अध्यक्ष डॉ० टुक्सन हैं। उनसे मिलकर मैंने आनन्द का अनुभव किया। यहाँ के कार्यकर्त्ताओं से भी मैंने भेंट की।

मैंने हालैण्ड में लाइडन विश्वविद्यालय भी देखा। यहाँ मुझे यह देखकर बहुत ही सन्तोष हुआ कि यह विश्वविद्यालय भारतीय विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन में विशेष सतर्क है। भारतीय राजदूत डॉ० मोहन सिंह मेहता ने लाइडन के अनेक विद्वानों से मेरा परिचय कराया।

फ्रांस में भी भारतीय संस्कृति के अनेक विद्वानों से मिलकर मुझे अधिक प्रसन्नता हुई।

जेनेवा तथा ब्यर्न आदि में भी भारतीय ज्ञान का अनुशीलन देखकर मुझे आनन्द हुआ। मैंने रोम विश्वविद्यालय को भी देखा। वहाँ के संस्कृत विभाग को देखकर मुझे आह्लाद हुआ। वहाँ के अध्यक्ष डॉ० तूची हैं। इन्होंने वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से मेरा परिचय कराया।

मैंने युगोस्लाविया तथा ग्रीस के भी विश्वविद्यालयों को देखा। वहाँ के प्रोफ़ेसरों में भारत के प्रति सहानुभूति देखी। वहाँ मैंने अपना भाषण भी दिया। वहाँ के मन्त्रियों ने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि यहाँ संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के अध्यापन की शीघ्र ही व्यवस्था की जायेगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्राच्यविद्या सम्बन्धी अच्छा कार्य हो रहा है। न्यूयार्क का कार्य भी सराहनीय है।

वास्तव में, अपनी भारतीय संस्कृति इतनी उदार और व्यापक है कि इसकी प्रगति स्वाभाविक है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा तथा शैली की दृष्टि से एक प्रशस्त सांस्कृतिक निबन्ध है।

(१२) महर्षि व्यास

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित निबन्धों में 'महर्षि व्यास' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने व्यासजी के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

महर्षि व्यासजी भारतीय ज्ञानगंगा के भगीरथ हैं। इन्होंने पुराणों तथा महाभारत की रचना की, जो ज्ञान गरिमा के प्रतीक हैं।

यमुना नदी के एक द्वीप में जन्म होने के कारण ये द्वैपायन के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी माता का नाम सत्यवती तथा पिता का नाम पराशर था, जो प्रसिद्ध महर्षि थे। एक बार ये यमुना के किनारे आये। वहीं पर दाशराज द्वारा पालित कन्या सत्यवती को देखकर वे विमोहित हो गये। वह पिता की आज्ञा से यमुना में नाव द्वारा इस पार से उस पार यात्रियों को मुफ्त में ही पहुँचाया करती थी। वह वास्तव में चेदि देश के राजा उपरिचर वसु के वीर्य से, जिसे मछली पी गयी थी, पैदा हुई थी। जब मल्लाहों ने उस मछली को फँसा कर उसे काट कर देखा, तो वे उसके पेट में बालिका देखकर आश्चर्य

चकित हो गये और राजाज्ञा से कन्या को दाशराज को पालन हेतु दे दिया। उसके शरीर से मछली की गन्ध निकलती थी, जिससे वह कन्या मत्स्यगन्धा के नाम से प्रसिद्ध थी। पराशरजी ने उससे यमुना पार ले जाने के लिए कहा। जब नाव बीच धारा में गयी, तब उन्होंने उससे काम-याचना की और अपने प्रताप से दिन में ही कुहासा द्वारा अन्धकार प्रकट कर उसे योजनागंधा बनाकर द्वीप पर संभोग किया, जिससे द्वैपायन व्यासजी का जन्म हुआ। ऋषि पराशरजी ने सत्यवती से कहा कि तुम्हारा कुमारत्व यथावत् बना रहेगा। तत्पश्चात् वे आश्रम पर चले गये, तब व्यासजी ने कहा—माँ, तुम मुझे जब याद करोगी, तब मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित रहूँगा। इस समय मैं तप हेतु जा रहा हूँ।

सत्यवती अपने घर आयी और अपने पिता दाशराज से सब कुछ वर्णन किया। दाशराज को प्रसन्नता हुई। बहुत समय बाद राजा शान्तनु उसी यमुना के किनारे आये और वे भी सत्यवती के सौन्दर्य पर विमोहित हो गये, उससे विवाह के लिए प्रेम-प्रस्ताव किया, परन्तु उसने कहा कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, पिता के आधीन हूँ। आप मेरे लिए पिता से बातचीत करें।

महाराजा शान्तनु का विवाह गंगा से हो चुका था, परन्तु पुत्रों को जन्म देने के बाद वे चली गयी थीं। भीष्मपितामह उन्हीं के पुत्र थे। पत्नी के बिना महाराजा शान्तनु बड़े चिन्तित थे। अन्ततोगत्वा, सत्यवती के साथ विवाह हो गया। यह भीष्म की सौतेली माँ थी। समयानुसार इसने दो पुत्रों को जन्म दिया—चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य। कुछ समय के पश्चात् महाराजा शान्तुन तथा चित्रांगद का जब निधन हो गया, तब विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक हुआ। भीष्मपितामह ने पहले ही प्रतिज्ञा की थी कि न मैं विवाह करूँगा, न राज्य लूँगा। अतः वे काशिराज के यहाँ कन्याओं के स्वयंवर में जाकर अम्बिका-अम्बालिका का हरण करके अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य का विवाह कर दिये, परन्तु वे भोगविलास में इतने तन्मय हो गये कि असमय में ही काल-कवलित हो गये। कोई सन्तान न होने से सत्यवती को बड़ी चिन्ता हुई, तब उसने अपने प्रथम पुत्र व्यासजी को स्मरण किया। वे तत्काल उपस्थित हो गये और माता के कथन से विचित्रवीर्य की दोनों विधवाओं में नियोग पद्धति से दो पुत्र उत्पन्न किये—अम्बिका से धृतराष्ट्र तथा अम्बालिका से पाण्डु। इसी अवसर पर एक दासी से भी एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विदुर था।

इस कुरुवंश को बढ़ाने वाले व्यासजी ही थे। अतः इस वंश से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। वे कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर के निकट ही सरस्वती नदी के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगे और वहाँ की गतिविधियों को देखते रहे।

बड़े होने के कारण धृतराष्ट्र ही हस्तिनापुर के राजा बने। उनकी पत्नी का नाम गान्धारी था, जिससे दुर्योधनादि सौ पुत्र हुए। पाण्डु का विवाह कुन्ती तथा माद्री के साथ हुआ, जिनमें कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा माद्री से नकुल, सहदेव हुए। पाण्डु असमय में ही पञ्चत्व को प्राप्त हो गये। उनके दाह-संस्कार के समय व्यासजी उपस्थित थे। एक दिन व्यासजी ने माता सत्यवती को समझाया कि माँ, बहुत विकट समय आने वाला है, तुम उसे देख नहीं सकोगी। अतः तुम वन में चलो, वहीं भगवान् में मन लगाओ।

इधर कौरवों तथा पाण्डवों में बहुत विरोध हो गया। व्यासजी ने महाराजा धृतराष्ट्र को बहुत समझाया कि दोनों को मिलाकर न्यायपूर्वक राज्य करें, लेकिन उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

व्यासजी काल की महिमा जानते थे। काल सभी का जड़ है। वह अपने समय पर अपना कार्य पूरा करता है—

'कालमूलमिदं सर्वम्'।

अन्ततोगत्वा महाभारत का युद्ध हुआ, धन-जन का विनाश हुआ। धर्म की जीत हुई, अधर्म का पराजय। धर्मराज युधिष्ठिर राजा बने। व्यासजी ने दर्शन दिया। इस प्रकार घटनाओं के झंझावात में भी क्षोभ रहित स्थिति के प्रतीक हैं महर्षि वेदव्यास।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से एक प्रशस्त सांस्कृतिक निबन्ध है।

अनुवाद

संस्कृत श्लोकों का हिन्दी अनुवाद

(आदर्श संस्कृत श्लोक)

(१) निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव मे मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अनुवाद—नीतिज्ञ धीर पुरुषों की निन्दा करें या स्तुति, लक्ष्मी आवें या चली जायें, आज ही मरण हो या युगान्तर में, परन्तु वे न्यायपथ से कभी भी विचलित नहीं होते ।

(२) जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

अनुवाद—सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती, सत्यवचन में प्रवृत्त करती, मान बढ़ाती, पाप को दूर करती, चित्त को प्रसन्न रखती और दिशाओं में यश फैलाती है । इस प्रकार यह मनुष्यों का क्या नहीं करती ?

(३) पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं च गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

अनुवाद—सन्मित्र मित्र को पाप-कर्मों से बचाता है और हितकर कार्यों में लगाता है । गोप्य बातों को छिपाता तथा गुणों को प्रकट करता है । आपत्ति पड़ने पर छोड़कर नहीं भागता और यथासमय धनादि देकर सहायता करता है ।

(४) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः ॥

अनुवाद—लक्ष्मी उद्योगी पुरुषों को ही मिलती है, परन्तु कायर पुरुष दैव-दैव पुकारा करते हैं। अतः भाग्य के आश्रय में न रहकर यथाशक्ति पौरुष करना चाहिए। यदि यत्न से की कार्य सिद्ध न हो तो इसमें क्या दोष ?

(५) असम्भवं हेममृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले, धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति ॥

अनुवाद—यद्यपि स्वर्णमृग का जन्म असम्भव है, फिर भी राम स्वर्णमृग पर मुग्ध हो गये। विपत्ति के समय प्रायः बुद्धिमानों की भी बुद्धि मलिन हो जाती है।

(६) विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

अनुवाद—विपत्ति में धैर्य, उन्नति में क्षमा, सभा में वाक्-निपुणता, युद्ध में पराक्रम, यश में अभिरुचि तथा शास्त्र में आसक्ति—ये सभी गुण महात्माओं में स्वभावसिद्ध होते हैं।

(७) शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥

अनुवाद—चन्द्रमा-सूर्य का राहु द्वारा ग्रसित होना, हाथी और सर्प का बँधा जाना तथा बुद्धिमानों का दरिद्र होना देखकर मेरी बुद्धि में तो यही आता है कि भाग्य ही प्रबल है।

(८) अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

अनुवाद—बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्र-ज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता—ये पुरुष की शोभा बढ़ाने वाले गुण हैं।

(९) काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

अनुवाद—बुद्धिमानों का समय काव्यशास्त्र की चर्चा करते हुए आनन्द

के साथ व्यतीत होता है और मूर्खों का समय दुर्व्यसन, निद्रा तथा कलह के द्वारा व्यतीत होता है।

(१०) अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

अनुवाद—यह मेरे हैं और वे दूसरे हैं—ऐसा विचार क्षुद्र बुद्धि वाले करते हैं, उदार चरित्र वालों के लिए तो यह सारी पृथ्वी ही कुटुम्ब है।

(११) यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ।।

अनुवाद—जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित का सेवन करता है, उसकी निश्चित वस्तु नष्ट हो जाती है, अनिश्चित तो नष्ट है ही।

(१२) अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

अनुवाद—नित्य अभिवादन करने वाले तथा वृद्धों की सेवा करने वाले की आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों की वृद्धि होती है।

(१३) दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दंशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे ।।

अनुवाद—दुर्जन तथा सर्प दोनों की तुलना में सर्प ही श्रेष्ठ है, दुर्जन नहीं; क्योंकि सर्प तो समय आने पर ही डँसता है और दुर्जन तो पग-पग पर डँसता रहता है।

(१४) परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भपयोमुखम् ।।

अनुवाद—परोक्ष में कार्य विगाड़ने वाले तथा प्रत्यक्ष में प्रिय बोलने वाले मित्र का वैसे ही त्याग कर देना चाहिए जैसे विष से भरे और दुग्धमुख वाले घड़े का त्याग करते हैं।

(१५) सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्या विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ।।

अनुवाद—सुखार्थी को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख कहाँ ? अतः सुख चाहने वाला विद्या को छोड़ दे और विद्या चाहने वाला सुख का त्याग कर दे।

व्याकरण

भाषा-प्रयोग

(आदर्श शुद्ध वाक्यों का प्रयोग)

अशुद्ध वाक्य	शुद्ध वाक्य
१. मुझे पाँच रुपया दो।	: मुझे पाँच रुपये दो।
२. मैंने पुस्तक पढ़ा।	: मैंने पुस्तक पढ़ी।
३. हम पुस्तक नहीं पढ़े।	: मैंने पुस्तक नहीं पढ़ी।
४. मैंने रात भर पढ़ना है।	: मुझे रात भर पढ़ना है।
५. वह पुस्तक नहीं खरीदा।	: उसने पुस्तक नहीं खरीदी।
६. तुम मितभाषी व्यक्ति है।	: तुम मितभाषी व्यक्ति हो।
७. मैंने घोड़ा और बैल खरीदी।	: मैंने घोड़ा और बैल खरीदे।
८. राम और सीता मेले में आई।	: राम और सीता मेले में आये।
९. मैं पढ़ता है।	: मैं पढ़ता हूँ।
१०. साहब आ रहा है।	: साहब आ रहे हैं।
११. पिताजी, तुम क्या कर रहे हो ?	: पिताजी, आप क्या कर रहे हैं ?
१२. तुलसी महान् कवि था।	: तुलसीदास महान् कवि थे।
१३. राम वन में आ रहा है।	: राम वन में आ रहे है।
१४. चाचा आ रहा है।	: चाचाजी आ रहे हैं।
१५. भैया, तुम क्यों निराश हो ?	: भैयाजी, आप क्यों निराश हैं ?
१६. पक्षियाँ आकाश में उड़ती है।	: पक्षी आकाश में उड़ते हैं।
१७. राम ने ऐसा करना चाहिए।	: राम को ऐसा करना चाहिए।
१८. आपके क्या हाल-चाल है ?	: आपका क्या हाल-चाल है ?
१९. इस अच्छे सुअवसर को हाथ से न जाने दो।	: इस सुअवसर को हाथ से न जाने दो।
२०. मेरे पूज्यनीय पिताजी आ रहे हैं।	: मेरे पूज्य पिताजी आ रहे हैं।
२१. इसकी सौन्दर्यता सराहनीय है।	: इसका सौन्दर्य सराहनीय है।

२२. आज मुझे आवश्यकीय कार्य पर जाना है।	: आज मुझे आवश्यक कार्य के लिए जाना है।
२३. प्राचार्य की सौजन्यता से यह कार्य पूर्ण हुआ।	: प्राचार्य के सौजन्य से यह कार्य पूर्ण हुआ।
२४. तुम्हारा कार्य असह्यनीय है।	: तुम्हारा कार्य असहनीय है।
२५. विद्वानों का झुण्ड आ रहा है।	: विद्वान् आ रहे हैं।
२६. श्याम मिठाई खाई।	: श्याम ने मिठाई खाई।
२७. मैंने यह काम करता रहा।	: मैं यह काम करता रहा।
२८. राम ने घोड़ा खरीदता है।	: राम घोड़ा खरीदता है।
२९. वे एक चोर पकड़े।	: उन्होंने एक चोर पकड़ा।
३०. वह पुनः फिर आ गया।	: वह पुनः आ गया।
३१. भगवान का घर देर है, अन्धेर नहीं।	: भगवान् के घर देर है, अन्धेर नहीं।
३२. मैं एक कीलो सेव खरीदे।	: मैंने एक किलो सेव खरीदा।
३३. श्याम खुशियों से भर गया.	: श्याम का मन खुशियों से भर गया।
३४. मोहन खाना खाया।	: मोहन ने भोजन किया।
३५. वह कहा कि कहाँ जा रहे हो?	: उसने पूछा कि कहाँ जा रहे हो?
३६. मैं एक वड़ा शहर में रहता है।	: मैं एक वड़े शहर में रहता हूँ।
३७. मुझे मीठा आम अनुकूल है।	: मुझे मीठे आम पसन्द हैं।
३८. वहाँ अनेकों मिष्ठान्न थे।	: वहाँ अनेक प्रकार के मिष्ठान्न थे।
३९. अध्यक्ष ने भाषण दिये।	: अध्यक्ष ने भाषण दिया।
४०. करीम कई सेव वेचा।	: करीम ने कई सेव बेचे।
४१. सुधा प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण किया।	: सुधा ने प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण की।
४२. छात्र परीक्षा बहिष्कार किया।	: छात्रों ने परीक्षा का बहिष्कार किया।
४३. आज एकादशी थी।	: आज एकादशी है।
४४. सौभाग्यवती कन्या का विवाह हो गया।	: आयुष्मती कन्या का विवाह हो गया।
४५. आपकी महानता सराहनीय है।	: आपकी महत्ता सराहनीय है।
४६. मुझे दस रुपया की आवश्यकता है।	: मुझे दस रुपये की आवश्यकता है।

४७. मैंने गाय खरीदा।	: मैंने गाय खरीदी।
४८. मैंने बैल खरीदी।	: मैंने बैल खरीदा।
४९. कोकिल बोल रहा है।	: कोकिल कूक रहा है।
५०. मैंने गिरिजा की पूजा किया।	: मैंने गिरिजा की पूजा की।
५१. मुझे इस वर्ष सफलता मिला।	: मुझे इस वर्ष सफलता मिली।
५२. कृपया आप ध्यान देने की कृपा करें।	: आप ध्यान देने की कृपा करें।
५३. अन्त में आखिर सफलता मिल गयी।	: अन्त में सफलता मिल गयी।
५४. काला गाय आ गया।	: काली गाय आ गयी।
५५. यह काले गाय का दूध है।	: यह काली गाय का दूध है।
५६. दूध के भीतर चीनी मिलाओ।	: दूध में चीनी मिलाओ।
५७. सब गाय दूध नहीं देता।	: सभी गायें दूध नहीं देतीं।
५८. दो चोरों पकड़े गये।	: दो चोर पकड़े गये।
५९. वे एक चोर पकड़े।	: उन्होंने एक चोर पकड़ा।
६०. तुमने दौड़ा।	: तुम दौड़े।
६१. हम पुस्तक नहीं पढ़े।	: मैंने पुस्तक नहीं पढ़ी।
६२. माँ की आँखों में आँसू था।	: माँ की आँखों में आँसू थे।
६३. आज सुन्दर सुअवसर है।	: आज सुन्दर अवसर है।
६४. मुझे असह्यनीय कष्ट है।	: मुझे असह्य कष्ट है।
६५. रामायण अच्छा है।	: रामायण अच्छी है।
६६. तुम कब तक आवोगे ?	: तुम कब आओगे।
६७. भगवान् के अनेकों अवतार हैं।	: भगवान् के अनेक अवतार हैं।
६८. इस कार्य के लिए मैं आपको धन्य कहता हूँ।	: इस कार्य के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।
६९. इस नाटक का प्रधान पात्री कौन है ?	: इस नाटक की प्रधान स्त्री-पात्र कौन है ?
७०. इस काव्य की नायक कौन है ?	: इस काव्य का नायक कौन है ?
७१. इस कार्य में भगवान् आपको सफल दें।	: इस कार्य में भगवान् आपको सफलता दें।

हिन्दी-निबन्ध

(१) हमारे प्रियकवि गोस्वामी तुलसीदास

शायद ही कोई ऐसा भारतीय होगा, जो प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास के पुनीत नाम से परिचित न हो। इनका जन्म बाँदा मण्डलान्तर्गत राजापुर नामक ग्राम में संवत् १५८९ वि० में हुआ था। कुछ विद्वानों ने इनका जन्म संवत् १५५४ वि० माना है, परन्तु उपर्युक्त जन्म-संवत् ही अधिक प्रामाणिक है। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा इनकी माता का नाम हुलसी था। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण इनके माता-पिता ने अनिष्ट की आशंका से इनका परित्याग कर दिया। मुनिया नामक दासी ने इनका लालन-पालन किया, परन्तु वह स्वल्प काल में ही काल-कवलित हो गई, जिससे यह बालक अनाथ हो गया। यदि इस बालक को कहीं से चार चना मिल जाता था, तो वह समझता था कि मुझे अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष—चार फल मिल गया। अपनी इस दयनीय स्थिति का वर्णन इन्होंने निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

मातु पिता जग जाइ तज्यो,
विधिहु न लिख्यो कछु भाल भलाई।

× ×

जानत हौं चारि फल चारिहू चनक को।

संयोगवश वाराह-क्षेत्र में इनका गुरु नरहर्यानन्द से परिचय हुआ और इन्होंने उन्हीं के मुखारविन्द से भगवान् राम की कथा सुनी, जिसे संवत् १६३१ वि० में 'रामचरितमानस' के रूप में हिन्दी भाषा-बद्ध किया। इनकी पत्नी का नाम रत्नावली था, जिसे ये बहुत प्रेम करते थे। कहा जाता है कि इसी पत्नी की फटकार से इनका मन विरक्त होकर रामभक्ति में अनुरक्त हुआ। इनका देहावसान काशी में गंगा के अस्सी घाट पर संवत् १६८० वि० में हुआ। इस सम्बन्ध में दो प्रकार के दोहे प्रसिद्ध हैं—

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

× × ×

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर ।।

इन दोहों में अन्तिम दोहा ही अधिक प्रामाणिक माना जाता है। भक्तिकाल की सगुण धारा के रामभक्ति शाखा के कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का प्रमुख स्थान है। जिस समय इन्होंने काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय इनके पूर्ववर्ती कवियों द्वारा पाँच प्रकार की शैलियाँ तथा दो प्रकार की भाषाएँ मान्य हो चुकी थीं। गोस्वामीजी ने उन सभी शैलियों तथा भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखते हुए अपने विभिन्न काव्यों का निर्माण किया। यथा—विद्यापति की पदावली शैली के आधार पर गीतावली तथा विनयपत्रिका, सन्तों के दोहे की शैली पर दोहावली, सूफी कवियों की शैली पर रामचरितमानस, भाटों की शैली पर कवितावली तथा बरवै शैली पर बरवै रामायण। इन काव्यों के अतिरिक्त इनकी और भी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—जानकीमंगल, पार्वतीमंगल तथा रामलला नहछू इत्यादि। इनके प्रबन्ध काव्य की भाषा अवधी तथा पदों, कवित्त एवं सवैया की भाषा व्रज है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की इतनी बड़ी ख्याति का एकमात्र कारण है—उनका प्रबन्धकाव्य रामचरितमानस, जिसमें इन्होंने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम तथा जगत्-जननी भगवती सीता के पावन चरित्र का चित्रण किया है। वास्तव में ऐसे पुनीत चरित्र का प्रकाश ऐसे ही कवि की लेखनी से सम्भव था। राम के आदर्श चरित्र की एक झाँकी देखिए—

प्रात:काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिर्ताहि गुरु नावहिं माथा ।।

सीता का चरित्र आदर्श पतिव्रता का चरित्र है। यह अपने पति की अनुगामिनी है। वनपथ पर अपने स्वामी राम के पीछे गमन करती हुई इतनी सभीत हैं कि पति के चरणचिह्न से उनके चरण का स्पर्श न हो जाय—

प्रभु पद रेख-बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता ।।

वास्तव में गोस्वामीजी का यह प्रबन्ध काव्य मर्यादित काव्य है। यही कारण है कि इसके भीतर सर्वत्र मर्यादा निहित है। इनका शृंगार-वर्णन सुन्दर होते हुए भी इतना सौम्य है कि हम उसे माँ-बहिनों के समक्ष स्वेच्छापूर्वक पढ़ सकते हैं। इन्होंने जनकपुर में फुलवारी का वर्णन पूर्वानुराग के रूप में चित्रित किया है। इधर राम-लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र की आज्ञा से पुष्पचयन के निमित्त पुष्पवाटिका में जाते हैं और सीता अपनी सुभग

सहेलियों के साथ माता की आज्ञा से गिरिजा-पूजन के लिए आती हैं। दोनों एक-दूसरे के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं और अपने हृदय-मन्दिर में रूपचित्र अंकित कर लेते हैं—

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं। चारु चित्त भीतीं लिख लीन्हीं ॥

यह है गोस्वामीजी का संयोगश्रृंगार-वर्णन। वियोग-वर्णन में भी उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। वे सीता के वियोग में साधारण पुरुषों की भाँति विलाप करते हैं। वे वनजीवों तथा लताओं से पूछते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥

इतना होने पर भी गोस्वामीजी का यह रामविरह-वर्णन उन नायकों का विरह-वर्णन नहीं है, जो विलासिता का स्वप्न देखते हैं, चारपाई पर करवटें बदलते हैं तथा हाय-हाय करते हैं; प्रत्युत ऐसी अवस्था में भी वे सजग हैं। वे जटायु, शबरी, सुग्रीव एवं विभीषण को दर्शन एवं शरण देकर उनका उद्धार करते हैं तथा साधु-सन्तों को दुःख देने वाले राक्षसों का संहार करते हैं।

श्रृंगार के समान ही गोस्वामीजी करुण तथा रौद्र आदि रसों के वर्णन में भी सिद्धहस्त हैं। इस प्रकार इन्हें भावपक्ष में तो आशातीत सफलता मिली ही है, इनका कलापक्ष भी बहुत ही मनोहर है। इन्होंने अलंकारों का वर्णन चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया है, बल्कि वे विषयानुसार स्वभावतः आ गये हैं। अनुप्रास इनका प्रिय अलंकार है, सर्वत्र व्याप्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें अनुप्रास का राजा कहा है—

बंदउँ गुरुपद पदम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥

× × ×

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥

इन्होंने रूपक अलंकार का सर्वाधिक वर्णन किया है। धनुभंग के समय रूपक का एक चित्र देखिए—

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग ॥

इसी प्रकार इन्होंने उपमा, श्लेष तथा अतिशयोक्ति आदि प्रसिद्ध अलंकारों का यथेष्ट वर्णन किया है।

तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस आज समस्त भारतीय जनता के गले का हार बना हुआ है। केवल भारत ही नहीं, विदेशों में भी जितना

मानस का प्रचार-प्रसार है, उतना हिन्दी साहित्य के किसी भी काव्य का नहीं। इसी मानस के कारण गोस्वामीजी आज भी अमर हैं। यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सर्वाधिक अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है? तो इसका एकमात्र यही उत्तर हो सकता है कि भारत-हृदय, भारतीय कुलभूषण, भक्तकविचूड़ामणि मर्यादावादी कवि गोस्वामी तुलसीदास।

(२) हमारे प्रिय लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म रायबरेली मण्डलान्तर्गत दौलतपुर नामक ग्राम में सन् १८६४ ई० में हुआ था। विद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर ये कुछ समय तक रेलवे-विभाग में नौकरी करते रहे, परन्तु भगवान् ने इन्हें एक साहित्यिक विभूति बनने के लिए जन्म दिया था, रेलवे की नौकरी के लिए नहीं। इन्होंने घर पर ही हिन्दी, संस्कृत. बँगला तथा मराठी का अध्ययन करके अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। हिन्दी भाषा तथा साहित्य की ओर इनकी विशेष रुचि थी। इन्होंने इसे सुधारने तथा सँवारने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया। इसकी चिन्ता में ये चौबीसों घण्टे व्यस्त रहा करते थे। इन्होंने हिन्दी का अस्थिर लेखन शैली को स्थिरता प्रदान की। इनके पूर्व जितने भी गद्य-लेखक हुए थे, उनकी रचनाओं में अशुद्धता तथा उच्छृंखलता की प्रधानता थी। द्विवेदीजी ने भाषा को व्याकरण सम्बन्धी नियमों से बाँध कर उसके रूप को सुसंस्कृत तथा परिष्कृत बना दिया। सर्वप्रथम इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करना प्रारम्भ करके एक नवीन एवं प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने अपने समकालीन लेखकों का एक मण्डल बनाया, जो 'द्विवेदी-मण्डल' के नाम से विख्यात था। इनका देहावसान सन् १९३८ ई० में हो गया।

हिन्दी गद्य-साहित्य के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी का प्रमुख स्थान है। ये अपने समय के गद्य-लेखकों के शिरोमौर्य थे। इनकी निम्नांकित कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, सम्पत्तिशास्त्र, रसज्ञरञ्जन तथा विचार-विमर्श। इनकी भाषा खड़ी बोली परिष्कृत हिन्दी है। इनकी शैली के तीन रूप हैं—परिचयात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली तथा अन्वेषणात्मक शैली।

इनकी शैलियों में ५५ मधुर आकर्षण है, जिसमें सरलता विद्यमान है। इनकी कृतियों को देखने से यह ज्ञात होता है कि ये भावों को सुन्दरतापूर्वक व्यक्त करने में तथा व्यंग्योक्ति निरूपण में अद्वितीय हैं। भाषा के क्षेत्र में ये अन्यतम लेखक हैं। इनकी भाषा सरल तथा सुबोध है। इनके सिद्धान्तानुसार प्रचलित शब्दों को अपना लेना ही हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए उपयुक्त है, चाहे वे शब्द संस्कृत के हों, चाहे अरबी के हो या चाहे फारसी के। यही कारण है कि द्विवेदीजी की भाषा में सर्वत्र सजीवता तथा स्वाभाविकता विद्यमान है, जिसे पढ़कर पाठक मुदित हो जाते हैं। यहाँ द्विवेदीजी द्वारा लिखित 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' नामक निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ अवतरित की जा रही हैं, जिससे इनकी भाषा-शैली पर प्रकाश पड़ता है—

'जब कमल शोभित होते हैं तब कुमुद नहीं और जब कुमुद शोभित होते हैं तब कमल नहीं। दोनों की दशा एक-सी नहीं रहती, परन्तु इस समय प्रातःकाल दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुद बन्द होने को हैं, पर अभी पूरे बन्द नहीं हुए। उधर कमल खिलने को हैं, पर अभी पूरे खिले नहीं। रहे भ्रमर, सो अभी दोनों पर मँडरा रहे हैं और गुंजा-रव के बहाने दोनों ही के प्रशंसा के गीत गा रहे हैं'।

इसी प्रकार 'साहित्य की महत्ता' नामक निबन्ध की भी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'ज्ञान-राशि के सञ्चित कोष का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती, तो वह रूपवती भिखारिन की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्रीसम्पन्नता, उसकी मान-मर्यादा उसके साहित्य पर ही अवलम्बित है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप, तलवार और बम के गोले में भी नहीं पाई जाती। जिस साहित्य में इतनी शक्ति है, जो साहित्य मुर्दों को भी जिन्दा करने वाली सञ्जीवनी औषधि का आकार है, जो साहित्य पतितों को उठाने वाला और उत्थितों के मस्तक को ऊँचा करने वाला है, उसके उत्पादन और संवर्द्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती, वह अज्ञानान्धकार के गर्त में पड़ी रह कर किसी दिन अपना अस्तित्व खो बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो मनुष्य इतने महत्त्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता

अथवा उससे अनुराग नहीं रखता वह देशद्रोही है, वह जातिद्रोही है; किं बहुना, वह आत्मद्रोही और आत्महन्ता भी है।

इस प्रकार द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, उसके लिए हिन्दी साहित्य सदैव उनका ऋणी रहेगा। इन्होंने अंग्रेजी की ओर झुके हुए हिन्दी भाषा-भाषियों को हिन्दी की ओर खींचा, अन्य भाषाओं से रत्न निकाले और उससे हिन्दी भाषा को सुसज्जित किया। इन्होंने हिन्दी को उस समय चमकाया, जब उसमें कोई चमक नहीं थी।

द्विवेदीजी की हिन्दी-सेवा से प्रभावित होकर एक आलोचक ने इनकी तुलना डाक्टर जानसन से करते हुए लिखा है कि 'द्विवेदीजी ने हिन्दी के लिए वही कार्य किया, जो अंग्रेजी के लिए डाक्टर जानसन ने किया था। जिस प्रकार डाक्टर जानसन अपने युग के आचार्य थे, हिन्दी संसार भी द्विवेदीजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करके उन पर गर्व करता है'।

(३) हमारे प्रिय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

अथवा

हमारे प्रिय प्रतिनिधि-कवि मैथिलीशरण गुप्त

श्रीमैथिलीशरण गुप्त का जन्म झाँसी मण्डलान्तर्गत चिरगाँव नामक ग्राम में सन् १८८६ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम रामचरण गुप्त था, जो बड़े ही कविताप्रेमी एवं धार्मिक व्यक्ति थे। इनके ऊपर पिता के व्यक्तित्व की पूर्ण छाप पड़ी थी। कहा जाता है कि एक दिन इनकी एक कविता पर प्रसन्न होकर इनके पिता ने इन्हें महाकवि होने का आशीर्वाद दिया था, जो सत्य हुआ। सन् १९६४ ई० में इनका देहावसान हो गया।

आधुनिक युग के यशस्वी कवियों में इनका नाम बड़े ही आदर के साथ स्मरण किया जाता है। वे हमारे समक्ष राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी कविताओं के कारण राष्ट्रकवि एवं आधुनिक हिन्दी काव्यधारा को नवीन रूप देकर विकसित करने के कारण प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनकी निम्नांकित कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं—भारतभारती, पञ्चवटी, रंग में भंग, जयद्रथ-वध, द्वापर, साकेत तथा यशोधरा। इनमें अन्तिम दो बड़े काव्य हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार साकेत महाकाव्य की संज्ञा से अलंकृत है। इसकी रचना का मुख्य ध्येय यह है कि 'उर्मिला काव्य की उपेक्षिता न रह जाय।'

इस काव्य में उर्मिला का चरित्र महनीय है। कवि ने उसे 'स्वर्ग का सुमन' कहा है—

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला।
नाम उसका उचित ही है उर्मिला॥

साकेत में कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग तथा वियोग का वर्णन किया है, परन्तु वियोग की प्रधानता है। जब लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता राम के साथ वन चले जाते हैं, उस समय वियोगिनी उर्मिला विरह से संतप्त होकर अपनी प्रिय सखि सुलक्षणा से कहती है—

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग तो जलता ही है, दीपक भी जलता है॥

विरहावस्था में एक दिन उर्मिला के निकट कामदेव उपस्थित होता है, जिससे उनके हृदय में क्षोभ होने लगता है। सर्वप्रथम तो वह उससे अनुनय-विनय करती है, परन्तु अन्त में उसके न मानने पर उसे फटकारते हुए कहती है—

मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो॥
होकर मधु के मीत मदन, पटु तुम कटु गरल न गारो।
मुझे विकलता तुम्हें विफलता, ठहरो श्रम परिहारो॥
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारों।
बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह, यह हर नेत्र निहारो॥
रूप दर्प कन्दर्प तुम्हें तो, मेरे पति पर वारो।
लो यह मेरी चरणधूलि, उस रति के सिर पर डारो॥

इस काव्य के अन्तर्गत अनेक स्थानों पर स्वाभाविक चित्रण भी हुआ है; जिससे काव्य की कमनीयता बढ़ गई है। यथा कैकेयी के प्रति मन्थरा का कथन—

भरत से सुत पर भी सन्देह।
बुलाया तक न जिसे था गेह॥

एक आलोचक ने साकेत की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'उर्मिला की तपस्या तपस्विनी उमा की तपस्या की याद दिला देती है। चौदह वर्ष की कठिन तपस्या के बाद जब उसने अपने देवता को पुनः पाया, तब उसके

ऐहिक जीवन में रह ही क्या गया था ? प्रियतम से मिलन का समय उपस्थित होने पर वह अपनी प्रिय सखि सुलक्षणा से कहती है—

पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं।
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं ॥

गुप्तजी ने यशोधरा नामक काव्य की रचना नाटकीय ढंग पर की है। जिस समय भगवान् बुद्ध मोक्षप्राप्ति हेतु अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा और प्रिय पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़कर चले जाते हैं, उस समय वह घबड़ाती नहीं, बल्कि अपनी प्रिय सखी से अपने पति की सफलता हेतु शुभकामना करती है—

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात।
पर चोरी चोरी गये, यही बड़ा व्याघात ॥
सखि वे मुझसे कह कर जाते।
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथबाधा ही पाते ॥

इस काव्य का अन्तिम लक्ष्य अबला जीवन की महत्ता है—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

गुप्तजी ने भारतभारती में देशप्रेम की अच्छी झलक दिखाई है। यह राष्ट्र-प्रेम का परिचारक है—

जिसको न निज गौरव तथा निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है ॥

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्तजी ने अपने काव्यों, विशेष रूप से भारत-भारती के माध्यम से जनमानस को प्रेरित करते हुए राष्ट्रीयता को जाग्रत किया है तथा इसी प्रकार साकेत तथा यशोधरा के माध्यम से नारी-उत्थान के विविध रूपों का चित्रण करके समाज को नवीन दिशा दिखला कर प्रतिनिधित्व किया है।

अतः मैथिलीशरण गुप्त को आधुनिक युग का राष्ट्रकवि तथा प्रतिनिधि कवि से अलंकृत किया जाय तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं है।

(४) हमारा प्रिय काव्य सूरसागर

हिन्दी साहित्य के कृष्णभक्ति काव्यों में सूरदास कृत सूरसागर का विशेष महत्त्व है। यह केवल कृष्ण-साहित्य ही नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य की अमर निधि है। यह सर्वप्रिय काव्य है। भक्तकवि सूरदास ने भागवत के दशम

स्कन्ध के आधार पर पदावली शैली तथा व्रज भाषा में इस काव्य की रचना की है, जिसमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीला तथा यौवन-लीला के अनेक मधुर चित्र चित्रित हैं। ऐसा वर्णन गोस्वामी तुलसीदास से भी सम्भव न हो सका, परन्तु उन्हें हिन्दी साहित्य में जो सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, उसका एकमात्र कारण है—भगवान् राम का सर्वांगपूर्ण वर्णन।

वास्तव में सूरदासजी ने भगवान् कृष्ण की स्वाभाविक प्रक्रियाओं का जो चित्रण किया है वह केवल हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व-साहित्य के लिए भी आदर्श है। सूरसागर का बाल्य-वर्णन पढ़कर आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी दंग रह जाते हैं। बालक कृष्ण के घुटने चलने का एक मनोहर चित्र देखिए—

किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन, मुख प्रतिबिम्ब पकरिबे धावत॥

× × ×

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए॥

कृष्ण के अंगुली पकड़ कर चलने का भी दृश्य देखिए—

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराय करि पानि गहावत डगमगाय धरनी धरे पैया॥

बालकों में ईर्ष्या की मात्रा कितनी अधिक होती है, इसकी एक झलक देखिए। बालक कृष्ण धीरे-धीरे बड़े होते हैं। वे दिन-रात इसी चिन्ता में मग्न हैं कि मेरी चोटी बड़े भाई बलराम की चोटी की भाँति लम्बी क्यों नहीं हो जाती? वे दूध पीने में आनाकानी भी करते हैं, तब माता यशोदा कहती हैं—

कजरी को पय पिवहु लाल तब बढ़ेगी चोटी।

तत्पश्चात् वे दो-चार दिनों तक दूध पीते हैं और पुनः माता यशोदा से पूछते हैं—

मातु मम कबहुँ बढ़ेगी चोटी?
कितक बार मोंहि दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी॥

इसी प्रकार जब कृष्ण खेलने जाते हैं, उस समय ग्वाल-बाल तथा बलराम उन्हें चिढ़ाते हैं, तब ये माता यशोदा के निकट आकर कहते हैं—

मातु मोंहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हों, तोहिं जसुमति कब जायो।

इसी प्रकार गायों के चराने तथा बालकों के दैनिक चर्या के वर्णन भी बड़े ही मनोहर हैं—

खेलत में को काको गुसैंया।
अति अधिकार जनावत याते, अधिक तुम्हारी है कछु गैया।

यह तो हुआ सूरदास के सूरसागर का वात्सल्य-वर्णन, अब शृंगार-वर्णन भी देखिए। शृंगार के उभय पक्ष संयोग और वियोग वर्णन में सर्वप्रथम संयोग वर्णन उपस्थित किया जा रहा है। राधा-कृष्ण में प्रेम की उत्पत्ति बाल्यावस्था में ही हो जाती है और वह भी रूप आकर्षण के द्वारा—

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये स्याम रवि तनया के तट अंग लसत चंदन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि पर्‌यो ठगोरी॥

× × ×

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तुम बेटी ? देखी नाहिं कहूँ ब्रज खोरी॥

इस खेल ही खेल में इतनी बड़ी बात पैदा हो जाती है, जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम नाम की मनोवृत्ति का जैसा विस्तृत और पूर्ण ज्ञान सूरदास को था, वैसा और किसी कवि को नहीं। संयोग-शृंगार की एक और झाँकी देखिए; कृष्ण गाय दूह रहे हैं, वहीं उनके निकट राधिका भी खड़ी हैं—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढी॥

अब सूरदास के सूरसागर का वियोग-वर्णन देखिए। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर नन्द, यशोदा, गो-गोपी, ग्वाल-बाल सभी की अवस्था विषम है। राधिका तथा गोपियों के विरह की क्या चर्चा की जाय, जिनके साथ उन्होंने इतनी क्रीडाएँ कीं, रास-लीला रचाई। उनकी दशा का चित्र देखिए। वे परस्पर कहती हैं—

सखी, इन नैनन ते घन हारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै, जब ते स्याम सिधारे॥

उद्धवजी गोपियों को कृष्ण के ज्ञान, योग और निर्गुण का सन्देश सुनाते हैं, जिसे सुनकर वे कहती हैं—

लरिकाई को प्रेम कहौ अलि, कैसे छूटे ?

इसके अतिरिक्त प्रेमी कृष्ण हमारे सरल हृदय में तिरछे अड़े हुए हैं, उन्हें बाहर निकालना टेढ़ी खीर है—

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं उधो ! ह्वै तिरछे जू अड़े॥

गोपियाँ उद्धव के ज्ञान-योग तथा निर्गुण को दुर्लभ बतलाती हुई कहती हैं कि आप जिस निर्गुण का उपदेश दे रहे हैं, उसके माता-पिता तथा रूप-रंग का पता भी है ?

निर्गुन कौन देस को बासी।
को है जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी ?

अन्त में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धवजी, आपका निर्गुण हमारे किसी काम का नहीं, हमारी आँखें केवल कृष्ण के दर्शन के लिए लालायित हैं। अतः आप कृपा करके एक बार उनके मुख का दर्शन करा दें—

अँखिया हरि दरसन की भूखी।
बारक वह मुख फेरि दिखावहु, दुहि पय पियत पतूखी॥

यद्यपि भक्तकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर गोस्वामी तुलसीदास द्वारा निर्मित रामचरित के समान इतना व्यापक नहीं है, जिसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का समावेश हो, पर जिस परिमित क्षेत्र में वात्सल्य एवं शृंगार का निरूपण हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

(५) साहित्य और समाज
अथवा
साहित्य समाज का दर्पण है

साहित्य और समाज दोनों सापेक्ष हैं, दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि साहित्य ज्ञानराशि का सञ्चित कोष है, तो समाज व्यक्ति का सम्मिलित रूप है। किसी भी देश के साहित्य में हम उस देश का, उस देश की जाति का एवं उनकी सभ्यता का प्रतिबिम्ब देखते हैं। यही कारण है कि साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब या समाज का दर्पण कहा जाता है। मानव-जीवन में

साहित्य की बहुत बड़ी महत्ता है। इस सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय, वह स्वल्प है, क्योंकि साहित्य में जो शक्ति निहित है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं है। साहित्य से व्यक्ति एवं समाज दोनों का संवर्धन होता है। यह दोनों के लिए सञ्जीवनी है। यह पतितों को ऊपर उठाने वाला तथा उत्पीड़ितों के मस्तक को ऊँचा करने वाला है। जब हम अपने आदि काल के साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह काल लड़ाई-झगड़ों का पूर्ण काल रहा है। उस समय जितने भी कवि हुए, प्रायः सभी राजाश्रित थे। वे कविता भी करते थे और आवश्यकता पड़ने पर तलवार भी चलाते थे। वह ऐसा युग था. कि उस समय की स्त्रियाँ भी वीरांगनाएँ होती थीं। वे युद्ध के लिए अपने पतियों को उत्साहित करती थीं। यदि किसी वीर रमणी का पति युद्धभूमि से पीठ दिखाकर घर आता था, तब वह नारी अपने कायर एवं भयभीत पति को कोसती तथा व्यंग्यात्मक वचनों के मधुर प्रहार से उसका स्वागत-सत्कार करती थीं—

'आइए, पतिदेव, भले आए। मेरी चूड़ियाँ एवं मेरे वस्त्र पहन कर घर के कोने में घूँघट काढ़ कर बैठिए। आपका स्वागत है। अब आपके स्थान पर लड़ने के लिए मैं जा रही हूँ। दीजिए मुझे तलवार।' जिस स्त्री का पति युद्ध करते हुए रणभूमि में मृत्यु को वरण करता था, वह वीरांगना बहुत ही प्रसन्न होती थी और अपनी सखी से कहती थी कि 'सखी, बहुत अच्छा हुआ, जो मेरा पति युद्धभूमि में मारा गया, अन्यथा वह रण से विमुख होकर घर आता तो मुझे सहेलियों के बीच में लज्जित होना पड़ता—

भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि म्हारा कंत।
लज्जेयं जु वियंसियहुँ जो भग्गा घर अंत॥

आदिकाल के अवसान के पश्चात् भक्तिकाल के साहित्य का निर्माण हुआ। प्रायः यह देखा जाता है कि जब मनुष्य विपत्तियों से आवृत होता है तब ईश्वर का स्मरण करता है। ठीक यही परिस्थिति आदिकाल के अवसान और भक्तिकाल के प्रारम्भ की हुई। आदि युग में लड़ाई के होने से देश में धन-जन दोनों की क्षति हुई। फलतः जनता कल्याण का दूसरा मार्ग न देखकर ईश्वर के शरणापन्न हुई। इसी समय तुलसी तथा सूर जैसे भक्तकवियों ने समाज का रुख देखकर राम और कृष्ण साहित्य का निर्माण करके जनता को सुखी बना दिया। अब सारा युग राम-कृष्णमय हो गया—

·चरन कमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई॥

भक्तिकाल के पश्चात् ऐसा युग आया, जिसमें प्रायः सभी राजा-प्रजा विलासिता में मग्न थे। इस समय के कवि भी राजाश्रित थे। अतः इस समय के कवियों का वर्णनीय विषय वही हुआ, जो राजाओं को प्रिय था। इस काल के प्रसिद्ध कवि बिहारीलाल जिस समय राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचे, उस समय राजा अपनी मुग्धा रानी के प्रेम में इतने विभोर थे कि राज-काज देखने के लिए बाहर निकलते ही न थे। दरबारियों की राय से बिहारी ने राजा के पास एक व्यंग्यपूर्ण दोहा भेजा—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अली कली में ही बन्ध्यों आगे कवन हवाल॥

कहा जाता है कि राजा जयसिंह इस दोहे से बहुत ही प्रभावित हुए और तुरन्त रनिवास से दरबार में आकर कवि बिहारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और बहुत-सा पारितोषिक देकर अपना दरबारी कवि बना लिया। तदनन्तर इसी प्रकार के शृंगाररसपरिपूर्ण दोहे बनाने के लिए कहकर प्रति दोहे एक-एक अशर्फी पारितोषिक देने का वचन दिया—

हुकुम पाइ जयसाहि के, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि साहित्य ने ही राजा जयसिंह को रनिवास से दरबार में बुलाया, साहित्य ने ही नादिरशाह के कत्लेआम को बन्द कराया। अतः साहित्य एक ओर व्यक्ति-समाज का उत्थान करता है और दूसरी ओर जीवन को सरस बनाता है। अतः जो व्यक्ति, जाति या समाज ऐसे महत्त्वपूर्ण साहित्य से अनुराग नहीं करता, वह देशद्रोही, जातिद्रोही तथा आत्मद्रोही है, क्योंकि साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब या दर्पण है।

(६) भारतीय संस्कृति

किसी भी देश की संस्कृति उस देश में निवास करने वाले मनुष्यों की प्रगति तथा विकास की परिचायिका होती है। यहाँ भारतीय संस्कृति से तात्पर्य है—भारत वर्ष में निवासी मनुष्यों की संस्कृति। संस्कृति शब्द संस्कृत

के 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—सुन्दर या उज्ज्वल स्थिति। यह इसका सीमित अर्थ है। इसके अतिरिक्त इसका एक व्यापक अर्थ भी है, जिससे वहाँ के स्थित मनुष्यों के उन्नत आचार-विचार का परिज्ञान होता है। वास्तव में भारत देश धर्म-प्रधान देश है। यहाँ के निवासी भारतीय कहलाते हैं, जिनमें धर्म की विशेषता है। यही धर्म संस्कृति का परिचायक है। जिस प्रकार धर्म अनादि है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी अनादि है। यह भारत देश इतना बड़ा देश है कि इसमें अनेक जातियाँ, अनेक सम्प्रदाय, अनेक धर्म तथा अनेक भाषा-भाषी निवास करते हैं। यहाँ तो यह स्थिति है कि—

'कोस-कोस पर बदले पानी,
चार कोस पर बानी'॥

यहाँ की विभिन्नताओं को देखकर विदेशी चकित हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि यह एक देश है अथवा अनेक देशों का सम्मिलित रूप है, परन्तु जब वह विदेशी यहाँ की संस्कृति से परिचित होता है तब उसकी शंका दूर हो जाती है। भारत वर्ष की संस्कृति की विशेषता है—अनेकता में एकता लाना। ऐसी विशेषता अन्य देशों में नहीं है। यह इस देश के संस्कृति की निजी विशेषता है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रंग वाले पुष्प माला में ग्रथित होकर माला के रूप में एक हो जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ की संस्कृति सभी को समेट कर एक बन जाती है।

भारतीय संस्कृति में नदियाँ, पर्वत, समुद्र, वृक्ष तथा नाग सभी देवी-देवताओं के समान पूज्य हैं। भारतवासी इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते, पूजते तथा नमन करते हैं। यहाँ की गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, गोदावरी तथा सरयू आदि पूज्य नदियों में; हिमालय, सुमेरु, कैलाश तथा विन्ध्याचल आदि पूज्य पर्वतों में; गंगासागर आदि समुद्रों में; वट, पीपल, श्रीफल तथा आमलक आदि वृक्षों एवं तुलसी आदि पौधों में तथा सस्यश्यामला पृथ्वी में भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त वेद, पुराण, रामायण, महा-भारत तथा स्मृति आदि धर्मग्रन्थों में; भगवान् के राम-कृष्ण अवतारों में; विष्णु, शिव एवं दुर्गा आदि देवमन्दिरों में; गर्भाधान, पुंसवन आदि षोडश संस्कारों में; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि वर्णव्यवस्था में एवं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में यह भारतीय संस्कृति सुरक्षित है।

यह भारत भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण की अवतार भूमि है, जिनके चरित पर महर्षि वाल्मीकि ने अपने रामायण तथा महर्षि व्यास ने अपने भागवत में सर्वप्रथम प्रकाश डाला है और अब तक कितने महान् कवियों द्वारा प्रकाश पड़ते आ रहे हैं। ये दोनों भगवान् राम तथा कृष्ण के रूप में धर्म की रक्षा तथा अधर्म के नाश के लिए एवं साधु-सन्तों के कल्याण के लिए अवतरित होते रहते हैं—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'॥

इसी तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है—

जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं वरनी।
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं सदा सज्जन मन पीरा॥

इसी भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर शहंशाह शाहजहाँ ने कहा था कि यदि पृथ्वी पर स्वर्ग कहीं है तो यहाँ ही है, यहाँ ही है, यहाँ ही है—

'गर फिरदौस बर रुए जमीनस्त।
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त'॥

इस प्रकार भारतीय संस्कृति अनादि है, अमर है और भविष्य में भी अमर रहेगी।

(७) विद्यार्थी जीवन में अनुशासन का महत्त्व

मानव-जीवन का समय शत वर्ष माना गया है—

'जीवेम शरदः शतम्'।

मैं सौ वर्षों तक जीवन धारण करूँ। महर्षियों ने इस सौ वर्ष की आयु को चार भागों में विभक्त किया है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। इनमें प्रथम अवस्था विद्योपार्जन, द्वितीय अवस्था धनोपार्जन तथा तृतीय अवस्था

पुण्योपार्जन की कही गई है। चतुर्थ अवस्था में तो कुछ भी सम्भव नहीं है। कहा भी गया है—

'प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ?'॥

अतः विद्याध्ययन का उपयुक्त समय ब्रह्मचर्यावस्था ही है। प्राचीन काल में विद्यार्थी गुरुकुल में निवास कर गुरुजनों की सेवा करते हुए विद्योपार्जन करते रहे। भगवान् राम भी अपने भ्राताओं के साथ गुरु वशिष्ठ के आश्रम पर और भगवान् कृष्ण भी गुरु सन्दीपन के आश्रम पर निवास कर शास्त्र-विद्याओं का अध्ययन किये—

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई।

यदि महाराजा दशरथ तथा श्रीवसुदेवजी चाहते तो गुरुवरों को अपने स्थान पर बुलवा कर अपने पुत्रों को विद्याध्ययन करा सकते थे, परन्तु प्राचीन काल की गुरु-परम्परा की मर्यादा का ध्यान रखते हुए उनके आश्रम पर ही शास्त्राध्ययन उचित समझा, क्योंकि वहाँ गुरुसेवा का भी अवसर प्राप्त होता था, जो विद्या की वृद्धि में सहायक था—

'गुरुशुश्रूषया विद्या।'

विद्यार्थी जीवन मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इसी नींव पर समस्त जीवन आधारित है, क्योंकि इसका श्रीगणेश बाल्यावस्था में होता है। इस समय मस्तिष्क बड़ा कोमल रहता है। इस काल में जैसा संस्कार पड़ जाता है, वही जीवन पर्यन्त रहता है। वृक्ष-पौधों को अंकुरित होने के कुछ समय बाद जिधर झुका दिया जाता है, वे जीवन भर वैसे ही बने रहते हैं। इसी प्रकार विद्यार्थी जीवन में जिधर झुकाव हो जाता है, वैसे ही सदैव बना रहता है। अतः विद्यार्थी जीवन विकास का प्रथम सोपान है। यह एक तपस्या है, जिससे शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास के साथ विनम्रता, सत्यता तथा अनुशासनप्रियता आदि अनेक सद्‌गुणों की भी वृद्धि होती है। कहा भी गया है—

'छात्राणां पठनं तपः'।

× ×

'विद्या ददाति विनयम्'।

सुख की कामना करने वाले को विद्या नहीं आती। अतः विद्यार्थी को

सुख का त्याग करना पड़ता है। सुखार्थी को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख कहाँ ?

'सुखार्थी वा त्यजेत् विद्या, विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम्'॥

विद्यार्थी को विद्या प्राप्त करने के लिए काक के समान चेष्टा, बक के समान ध्यान, श्वान के समान निद्रा के साथ अल्पाहार एवं गृहत्याग—इन पाँच लक्षणों (गुणों) को अपनाना अनिवार्य है, तभी विद्या आ सकती है—

'काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थीपञ्चलक्षणम्॥

विद्या के द्वारा विद्यार्थी विद्वान् होकर सर्वत्र पूजित होता है। विद्या प्रच्छन्न गुप्त धन है, न इसे कोई विभाजित कर सकता है और न कोई चुरा सकता है। विद्या के द्वारा समाज में तो पूजा होती ही है, राजदरबार में भी सम्मान होता है। विद्या की तुलना में कोई भी धन नहीं है। अतः विद्या-विहीन मनुष्य पशुतुल्य है—

'विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः'।

आज विद्यार्थियों के विद्योपार्जन के लिए अनेक विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय निर्मित हैं, जहाँ विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् शिक्षक नियुक्त हैं, पर विद्यार्थी शिक्षा से लाभान्वित होना नहीं चाहता। न तो उसकी गुरुजनों में श्रद्धा-भक्ति है, न अध्ययन में अभिरुचि। उसकी एकमात्र यही कामना रहती है कि किसी भी प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण होकर परीक्षोपाधिपत्र प्राप्त कर लें, चाहे एतदर्थ अनुचित साधन ही क्यों न अपनाना पड़े। आज के विद्यार्थी विनम्रता, सत्यता तथा अनुशासनप्रियता आदि सद्गुणों से बहुत दूर हो गये हैं। वे इतने उच्छृंखल हो गये हैं कि गुरुजनों का अपमान करते हैं, उन पर प्रहार करते हैं और कभी उनकी हत्या भी कर देते हैं। आधुनिक वातावरण ही इसका एकमात्र कारण है। शिक्षा का उद्देश्य है छात्रों का चरित्र-निर्माण। जब तक इस ध्येय की पूर्ति नहीं होगी तब तक विद्यार्थियों में विनम्रता आदि गुणों का विकास नहीं होगा। एतदर्थ आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में भी सुधार की आवश्यकता है, जिससे विद्यार्थियों में अनुशासन-प्रियता का भाव जागृत हो सके।

(८) हमारा प्रिय नगर : वाराणसी

भगवान् विश्वनाथ की प्रिय नगरी वाराणसी तीनों लोकों से न्यारी है। कहा जाता है कि यह भगवान् शिव के त्रिशूल पर बसी है और इसका प्रलय में भी नाश नहीं होता। वरुणा तथा अस्सी दो नदियों के बीच में बसी होने के कारण इसका नाम वाराणसी है। यहाँ भगवती भागीरथी गंगा उत्तर-वाहिनी हैं, जो धनुषाकार बहती हैं। गंगाजी को यह नगरी इतनी प्रिय है कि वे इसे स्वप्न में भी छोड़ना नहीं चाहतीं, बल्कि सदैव अंक में ही लिपटी रहना चाहती हैं, क्योंकि इनके प्रिय भगवान् शंकर यहाँ सदैव निवास करते हैं। भला प्रिय वियोग कोई सहन कर सकता है ? अत:—

सपनेहू नहिं तजी रही अंकम लपटाई।

वाराणसी की शोभा गंगा तथा गंगा-घाटों से है। इसके घाटों में अस्सी घाट, हरिश्चन्द्र घाट, केदार घाट, शीतला घाट, प्रयाग घाट, दशाश्वमेध घाट, राजेन्द्रप्रसाद घाट, मणिकर्णिका घाट, संकटा घाट, पंचगंगा घाट तथा राज-घाट इत्यादि प्रसिद्ध घाट हैं। यह नगरी काशी के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ अनेक विद्यालय, महाविद्यालय तथा तीन विश्वविद्यालय हैं। विश्वविद्यालयों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय अपने विशिष्ट गुरुवरों तथा अपनी शिक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं, जहाँ देश-विदेश से शिक्षार्थी आकर अपने विषयों का अध्ययन करते तथा विश्व-विद्यालयों की कीर्ति बढ़ाते हैं। यह नगरी प्रारम्भ से ही संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति का केन्द्र रही है और आज भी है तथा भविष्य में भी रहेगी। यह वाराणसी बड़े-बड़े महर्षियों, ऋषियों, तपस्वियों, महात्माओं, साधु-सन्तों, महापुरुषों एवं विद्वानों की तपस्या, साधना तथा अध्ययन का केन्द्रबिन्दु रही है, जहाँ से ज्ञान का प्रकाश सर्वत्र प्रसरित हुआ है। यह पुरी मोक्षदायिनी, ज्ञानवर्द्धिनी, पापनाशिनी तथा भगवान् विश्वनाथ एवं भगवती पार्वती (अन्न-पूर्णा) की निवासभूमि है। अत: ऐसा कौन पुरुष होगा, जो इसका सेवन न करें ?

मुक्ति जन्म महि जान ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि सो काशी सेइय कस न॥

यह काशी केवल एक-दो दिन नहीं, एक मास या एक वर्ष नहीं, बल्कि

श्रद्धापूर्वक जीवन पर्यन्त सेवन करने की पुरी है, क्योंकि यह कामधेनु के समान इच्छित फलदात्री है—

> सेइय सहित सनेह देह धरि कामधेनु कलि कासी।
> समन शोक सन्ताप पाप रुज सकल सुमंगल रासी॥
> तुलसी बस हर पुरी राम भजु जो भयो चहहु सुपासी॥

वास्तव में इस असार संसार में केवल चार ही सार (तत्त्व) है। काशी में निवास, सज्जनों का साथ, गंगाजल का सेवन तथा शिव-पूजन—

> 'असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
> काश्यां वास: सतां सङ्ग: गङ्गाम्भ: शिवपूजनम्'॥

मोक्षदायिनी सप्त पुरियों में वाराणसी का विशेष महत्त्व है। कहा जाता है कि यहाँ मृत्यु हो जाने पर जीव की सद्‌गति हो जाती है। माता अन्नपूर्णा उस जीव को अपनी गोद में लेकर बैठती हैं और भगवान् विश्वनाथ उसके कान में मंत्र का उपदेश करते हैं, जिससे वह पाप-ताप से निर्मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

ऐसे पुनीत एवं धार्मिक वाराणसी नगरी का दर्शन करने के लिए देश-विदेश से असंख्य जन प्रतिदिन आते रहते हैं। पर्वों एवं त्योहारों के अवसर पर तो उनकी संख्या विशेष बढ़ जाती है। यहाँ गंगास्नान तथा विश्वनाथ-अन्नपूर्णाजी का दर्शन करके तीर्थयात्री अपने को कृतकृत्य मानते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों में कालभैरव, संकटा, केदारेश्वर, दुर्गा, संकटमोचन तथा गणेशजी के मन्दिर भी दर्शनीय हैं। यहाँ का मानस-मन्दिर अपने ढंग का निराला है, जिसकी संगमरमर की दीवालों पर मानस की चौपाइयाँ तथा दोहे आदि उट्‌टंकित हैं तथा बीच में भगवान् राम, भगवती सीता तथा शेषावतार लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। यहाँ के मन्दिरों में भगवान् शिव-मन्दिर की ही प्रधानता है, जिनमें अनेक नामों से विश्वनाथजी प्रतिष्ठित हैं। ऐसे मन्दिरों की संख्या अनन्त हैं। यहाँ प्रत्येक राजमार्ग के किनारे, गलियों के भीतर तथा घरों में शिव विद्यमान हैं। काशी की शिवमूर्तियों के लिए यह कथन प्रसिद्ध है कि—

> काशी के कंकर शिवशंकर के समान हैं।

इस प्रकार वाराणसी या काशी की महिमा इतनी अधिक है कि वेद-

पुराण भी 'नेति नेति' कहकर गुणगान करते हैं। अतः साधारण मनुष्य अमित महिमा का क्या वर्णन कर सकता है ?

(९) गंगा का महत्त्व एवं गंगाप्रदूषण

भगवती गंगा पर्वतराज हिमालय की ज्येष्ठ कन्या हैं, जिन्हें पितामह की आज्ञा से देवगण हिमगिरि से याचना करके लोककल्याण हेतु स्वर्ग ले आये थे। एक दिन ब्रह्माजी ने कुपित होकर उन्हें मृत्युलोक में जाने का शाप दे दिया। कल्पभेद की कथा के अनुसार गंगा भगवान् विष्णु के पद-नख से प्रकट हैं। भगवान् विष्णु ने वामन रूप से राजा बलि के यज्ञ में तीन पग भूमि की याचना की थी, जिसे उन्होंने स्वीकार किया था, परन्तु भगवान् ने पृथ्वी नापते समय अपना विराट् रूप बना लिया। जब वे स्वर्गलोक नापने लगे, तब पितामह ब्रह्मा ने भगवान् के चरण को धोकर उस पुनीत जल को अपने कमण्डल में रख लिया। वही ब्रह्मद्रव गंगा के रूप में तीन लोक में पूजित है—

नख निर्गता सुर बंदिता त्रयलोकपावन सुरसरी।

राजा भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके पितरों के उद्धार के लिए ब्रह्माजी ने उसी ब्रह्मद्रव गंगा के बूँद को पृथ्वी पर छोड़ा, जिसे सर्वप्रथम भगवान् शंकर ने अपने जटाजूट में धारण किया। तत्पश्चात् वह गंगाजी राजा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे धारा के रूप में कल-कल निनाद करती हुई चलीं। उस दिन ज्येष्ठ शुक्ल दशमी की तिथि थी, जो गंगा-अवतरण या गंगा दशहरा के नाम से प्रसिद्ध हुआ—

'दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासे कुजेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता'॥

जिस समय देवनदी गंगा महाराजा भगीरथ के पथ का अनुगमन कर रही थीं, उस समय देव, ऋषि, गन्धर्व तथा मनुष्य आदि सभी उनकी रमणीय शोभा देखकर प्रसन्न हो रहे थे। इसी बीच गंगा ने अपने तीव्र जलप्रवाह से तपस्वी जह्नु मुनि की पूजा-सामग्री पत्र-पुष्पादि को बहा दिया, जिससे वे क्रोधित होकर उनके समस्त जल को पी गये, उनकी धारा लुप्त हो गई। राजा भगीरथ ने पीछे घूम कर देखा—गंगाजी का कहीं पता नहीं है। उन्होंने ऋषि की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया, जिससे पुत्री की कामना से मुनि ने

कान के मार्ग से गंगा को प्रकट कर दिया। इसी से देवनदी गंगा जह्नु-बालिका या जाह्नवी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। तदनन्तर गंगा मृत्युलोक को पवित्र करती हुई पाताललोक में गईं, जहाँ अपने जल-स्पर्श से राजा भगीरथ के पितरों का उद्धार किया। इस प्रकार त्रिपथगामिनी होकर देवनदी गंगा ने अपने पावन जल से स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल तीनों लोकों का कल्याण किया है। राजा भगीरथ की तपस्या से पृथ्वी पर अवतरण होने के कारण हैमवती गंगा भागीरथी के नाम से विख्यात हैं। यह देवनदी अपने प्रवाह से अपने तटवर्ती हरिद्वार, प्रयाग तथा वाराणसी आदि तीर्थों को तो पवित्र करती ही हैं, उस देश को भी पावन बनाती हैं, जहाँ प्रवाहित होती हैं—

धन्य देस सो जहँ सुरसरी।

देवनदी गंगा का ऐसा माहात्म्य है कि यदि कोई सौ योजन दूर से ही 'गंगा-गंगा' उच्चारण करता है, तो उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं और वह विष्णुलोक का अधिकारी बन जाता है—

'गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति'॥

इतना ही नहीं, यदि किसी के मन में गंगा-स्नान हेतु संकल्प आ गया तो उस मनुष्य के करोड़ों कुलों का उद्धार हो जाता है—

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा कुलकोटि उधारे।

वेदों तथा पुराणों में गंगाजी के दर्शन, स्पर्श, स्नान तथा जलपान की महिमा प्रचुर मात्रा में वर्णित है—

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरे पाप कह वेद पुराना।

परन्तु आज कल-कारखानों तथा गन्दे नालों आदि विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से गंगाजी का पुनीत जल दूषित होता जा रहा है। यद्यपि सरकार इसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील है, फिर भी इसमें जनता का भी सहयोग अपेक्षित है। गंगा-तटों की पवित्रता बनाये रखना—इनका परम कर्त्तव्य है।

एतदर्थ अपने कल्याण हेतु समस्त मानवों का यह परम धर्म है कि वे भक्ति तथा श्रद्धा के साथ देवनदी भगवती भागीरथी गंगा का सेवन करें, क्योंकि इस मृत्युलोक में गंगा कलिकाल के कुटिल जीवों के निस्तार के लिए ही आई हैं। अतः गंगा में अपनी दृढ़मति हेतु उनसे प्रार्थना करें—

'देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारणतरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले, मम मतिरास्तां तव पदकमले' ॥

(१०) पुस्तकालय की उपयोगिता

पुस्तकालय शब्द दो शब्दों से बना है—पुस्तक + आलय। इसका अर्थ है—पुस्तक का घर, जहाँ पुस्तकें रखी जाती हैं। यद्यपि दुकानों पर भी पुस्तकें रखी जाती हैं, परन्तु उनका लक्ष्य विक्रय करना है। अतः यहाँ पुस्तकालय से तात्पर्य उस स्थान की पुस्तकों से हैं जो क्रय हेतु न हों, बल्कि पठन हेतु हों।

पुस्तकालयों के दो प्रकार हैं—(१) सार्वजनिक पुस्तकालय, (२) व्यक्तिगत पुस्तकालय। सार्वजनिक पुस्तकालय से सभी लाभान्वित हो सकते हैं, परन्तु व्यक्तिगत पुस्तकालय से केवल वही लाभ उठा सकता है, जिसका वह पुस्तकालय हो। व्यक्तिगत पुस्तकालय की अपेक्षा सार्वजमिक पुस्तकालय श्रेष्ठ है, क्योंकि व्यक्तिगत पुस्तकालय का सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष से है, जो अपनी रुचि के अनुसार पुस्तकों का चयन करता है, परन्तु सार्वजनिक पुस्तकालय एक व्यक्ति की रुचि को नहीं बल्कि सभी की रुचि की पूर्ति करता है। व्यक्तिगत पुस्तकालय की सीमा सीमित रहती है, परन्तु सार्वजनिक पुस्तकालय की सीमा बृहद् होती है। इसमें विभिन्न विषयों की पुस्तकें पाठकों को उपलब्ध होती रहती हैं।

वास्तव में पुस्तकालय ज्ञानवर्द्धन का एक बहुत बड़ा साधन है। व्यक्तिगत पुस्तकालयों के समान ही विद्यालयों के पुस्तकालय होते हैं। उनमें प्रायः पाठ्य-पुस्तकों एवं उससे सम्बन्धित सीमित पुस्तकें रहती हैं, जिनसे अध्यापक एवं छात्र लाभान्वित होते हैं। उनसे सीमित ज्ञान बढ़ता है, परन्तु सार्वजनिक पुस्तकालयों में भिन्न-भिन्न विषयों की अनेक पुस्तकें रहती हैं, जिन्हें निर्धारित समय के भीतर वहाँ के वाचनालयों में बैठकर पढ़ा जा सकता है। सार्वजनिक पुस्तकालयों से पुस्तकों को घर ले जा करके भी अध्ययन कर सकते हैं, परन्तु एतदर्थ उनके नियम के अनुसार कुछ शुल्क देकर सदस्य बनना पड़ता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने से पूर्ण ज्ञान नहीं होता, उसकी पूर्ति तो पुस्तकालयों से ही होती है, क्योंकि वहाँ अनेक विषयों से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें होती हैं। अनेक लेखकों की विचारधाराओं से विशेष ज्ञानार्जन होता है। यदि कोई चाहे कि अपने पुस्तकालय में अनेक

पुस्तकें क्रय करके उनकी संख्या बढ़ा दें, तो यह कार्य कठिन है। यह तो सार्वजनिक पुस्तकालयों से ही सम्भव है। ऐसे पुस्तकालयों से धनी तथा निर्धन सभी लाभान्वित हो सकते हैं। पुस्तकालयों के वाचनालय में प्रतिदिन अनेक प्रकार के समाचारपत्र तथा मासिक पत्रिकाएँ आती रहती हैं। पाठक उन्हें पढ़कर देश-विदेश के समाचारों से परिचित होते हैं तथा पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार की कहानियों एवं मनोरञ्जन के साधनों से आनन्दित होते हैं, पुस्तकालयों के नियमों पर ध्यान देना तथा उसके अनुसार चलना परमावश्यक है। यथा—

१. पुस्तकों को गंदा न करें। २. पुस्तकों के पृष्ठों को न मोड़ें। ३. पुस्तकों में किसी प्रकार का चिह्न न लगावें। ४. पुस्तकों के पृष्ठों को न फाड़ें इत्यादि।

पुस्तकालय हमारा परम मित्र है। महर्षि वाल्मीकि का रामायण, महर्षि व्यास के भागवत इत्यादि पुराण, गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन से हम अपने जीवन को सुधार सकते हैं। इसी प्रकार राजनैतिक पुस्तकों से हमें राजनीति का ज्ञान होता है, सामाजिक पुस्तकों से समाज की स्थिति ज्ञात होती है, ऐतिहासिक पुस्तकों से अतीत के महापुरुषों का पता चलता है, भौगोलिक पुस्तकों से देश-विदेश की जलवायु का परिज्ञान होता है तथा वैज्ञानिक पुस्तकों से विज्ञान में प्रवेश होता है।

आजकल चल पुस्तकालयों की भी व्यवस्था है, जो चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। एक सीमित अवधि के लिए ऐसे पुस्तकालय एक गाँव से दूसरे गाँव में स्थित रहते हैं, जिनसे ग्रामीण जनता लाभान्वित होती है, परन्तु ऐसे चल पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या कम होती है।

सुना जाता है कि विदेशों के पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या अत्यधिक है। उनकी तुलना में हमारा भारत देश बहुत पीछे है। अतः सरकार से यह आशा की जाती है कि वह पुस्तकालय की दिशा में ध्यान दें और इसे समृद्धशाली बनायें। इसके साथ ही जनता का सहयोग भी अपेक्षित है कि वह तन, मन, धन से पुस्तकालयों को विकसित करने में अपना योगदान करें।

(११) देशप्रेम

अथवा

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

कौन ऐसा हतभाग्य मनुष्य होगा जो अपनी जननी, जन्मभूमि एवं देश

से प्रेम न करता हो, क्योंकि ये स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। इस सम्बन्ध में यह ठीक ही कहा गया है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

× ×

'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रस धार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं'॥

जिस मनुष्य को अपना गौरव नहीं, अपने देश का अभिमान नहीं, वह मनुष्य नहीं बल्कि पशु है और मृतक-सदृश है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है॥

अपने देश की रक्षा और उसके विकास के लिए सतत प्रयत्न करना देश-प्रेम कहलाता है। विषुवत् रेखा का निवासी भी, जहाँ बहुत गर्मी पड़ती है, हाँफ-हाँफ कर जीता है; वह भी अपने देश पर अलौकिक अनुराग रखता है। ध्रुव देश का निवासी भी जहाँ हिम और तम की अधिकता है, काँप-काँप कर जीता है और अपने देश की रक्षा के लिए प्राणों को भी न्योछावर कर देता है—

विषुवत् रेखा का वासी जो, जीता है नित हाँफ-हाँफ कर।
रखता है अनुराग अलौकिक, वह भी अपनी मातृभूमि पर॥
ध्रुववासी जो हिम में तम में, जी लेता है काँप-काँप कर।
वह भी अपनी मातृभूमि पर, कर देता है प्राण निछावर॥

हमारा भारतवर्ष स्वर्ग के समान सुख देने वाला तथा समस्त ऐश्वर्य एवं सुखों की भूमि है, जो इस पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ है, जहाँ जीवन धारण कर, जिसका अन्न-जल ग्रहण कर जिसकी धूल तथा मिट्टी में खेल-खेल कर हम इतने बड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि हम वीरों के वंशज हैं। अतः उस प्यारे देश से प्रेम करना, उसकी रक्षा करना हमारा परम धर्म है। जब तक मन में प्राण है, उसे हम कैसे त्याग सकते हैं? प्यारे देशवासियो, अपने मन में सोचो और विचार करो—

तुम तो हे प्रिय बन्धु, स्वर्ग-सी, सुखद सकल विभवों की आकर।
धरा शिरोमणि मातृभूमि में, धन्य हुए हो जीवन पाकर॥
तुम जिसका जल अन्न ग्रहण कर, बड़े हुए लेकर जिसकी रज।
तन रहते कैसे तज दोगे, उसको हे वीरों के वंशज॥

अतः मृत्यु का स्वागत करते हुए जब तक शरीर में एक भी श्वास है, आत्मगौरव की रक्षा करते हुए अपने देश से प्रेम करो। उसकी सुरक्षा में यदि मरण भी हो तो उसका स्वागत करो, वही सच्चा देशप्रेम है—

सच्चा प्रेम वही है जिसकी, तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।

एतदर्थ देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिए जीवन में त्याग की आवश्यकता है। इससे आत्मविकास के साथ मानवता भी विकसित और विलसित होती है, क्योंकि देशप्रेम पुण्यक्षेत्र कहा जाता है—

देशप्रेम वह पुण्यक्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलिसित।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित॥

वे मनुष्य धन्य हैं जो जननी, जन्मभूमि—भारत देश से सच्चा प्रेम करते हैं। ऐसे मनुष्यों का मस्तक सदैव ऊँचा रहता है, किसी के समक्ष झुकता नहीं। लोक में ऐसे ही देशभक्तों की पूजा होती है। अतः देशवासियों का परम कर्त्तव्य है कि वे व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर सच्चे अर्थ में पवित्र हृदय से देशप्रेम प्रदर्शित करें, जिससे समस्त देशों में भारत का गौरवपूर्ण स्थान बन सके और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ सके।

(१२) देशाटन

देशाटन शब्द दो शब्दों से बना है—देश + अटन। इसका अर्थ है—देश का भ्रमण। मनुष्य गतिशील प्राणी है, एक स्थान पर बैठे-बैठे मनुष्य का मन घबड़ा जाता है। अतः वह इधर-उधर भ्रमण करना पसन्द करता है और नवीन-नवीन स्थानों एवं दृश्यों को देखकर आनन्दित होता है। देशाटन संसार की सबसे बड़ी वस्तु है। यह ज्ञानवर्द्धन का परम श्रेष्ठ साधन है। एक स्थान पर बैठा हुआ मनुष्य न तो अपना कल्याण कर सकता है, न अपने परिवार का और न समाज का। हमारे आदि पुरुष देशाटन करके ज्ञानार्जन करते थे। आधुनिक पुरुषों में भी देशाटन करने वालों की कमी नहीं है। देशाटन में बड़ा ही आनन्द आता है। पुस्तकों में देश के विभिन्न स्थानों का वर्णन पढ़ने से भी आनन्द मिलता है, परन्तु देशाटन में अनिर्वचनीय आनन्द आता है, उसकी तुलना पुस्तक के आनन्द से नहीं की जा सकती। हिमालय को देखकर जो

आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, वह पुस्तक में हिमालय का वर्णन पढ़कर नहीं प्राप्त हो सकता। इसी प्रकार किसी नगर या किसी नदी आदि का वर्णन पढ़कर वह आनन्द नहीं मिल सकता, जो उनके साक्षात् दर्शन से प्राप्त होता है। वास्तव में देशाटन संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूति है। पाश्चात्य देशाटनकर्त्ताओं में डार्विनक, कोलम्बस तथा वास्कोडिगामा का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है, जिन्होंने अनेक नवीन अन्वेषण किया है। यदि वे देशाटन नहीं करते, तो अपने कार्य में सफल कैसे होते? हमारे भारतवर्षीय देशाटन-कर्ताओं की भी कमी नहीं है। गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी को कौन नहीं जानता? जिन्होंने घूम-घूम कर अपने-अपने बौद्धधर्म एवं जैनधर्म का प्रचार किया। यदि शंकराचार्य तथा रामानन्द देशाटन नहीं करते, केवल अपनी-अपनी कुटिया में बैठे रहते, तो वे देश के कोने-कोने में अपना मठ कैसे स्थापित करते और अपने ज्ञान का प्रचार कैसे करते? चैतन्य महाप्रभु ने घूम-घूम कर ही अपने मत का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द ने देशाटन करके ही अपना नाम किया। उन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर पण्डितों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। ईसा मसीह ने भी देशाटन किया था, जिससे उनका संदेश संसार में प्रसरित हुआ। भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण का गुण-गान करने वाले गोस्वामी तुलसीदास तथा भक्त सूरदास दोनों ने भ्रमण किया तथा अपने-अपने इष्टदेव का प्रचार किया। वास्तव में देशाटन एक धर्म है, जो इस धर्म को, इस व्रत को अपनाता है, वह सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। उसके जीवन में विकास तो होता ही है, वह दूसरों के जीवन को भी विकसित करता है। अतः मनुष्य को कूपमण्डूक न बनकर सभी के लिए चाहे वह पुरुष हो, चाहे स्त्री इस देशाटन का व्रत अपनाना परम धर्म है। यदि किसी के माता-पिता या प्रेमी सुहृद इस व्रत में बाधक बनते हैं, तो समझना चाहिए कि वे प्रह्लाद के माता-पिता के समान हैं। उनकी बातों पर ध्यान न देकर अपने इस देशाटन व्रत को पूर्ण करना चाहिए। इस देशाटन का समय तरुणाई ही है। अतः इसी समय में देशाटन करके जीवन का आनन्द लेना चाहिए, अन्यथा जवानी की अवस्था निकल जाने पर पछताना ही पड़ेगा। इस्माइल मरेठी ने ठीक ही कहा है—

सैर कर दुनिया के गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ?
जिन्दगानी गर रही तो, नौजवानी फिर कहाँ?

(१३) सत्संगति
अथवा
'सठ सुधरहिं सत्संगति पाई'

सत्संगति शब्द का अर्थ है—अच्छा साथ। दुर्जनों का साथ न करके सज्जनों का करना सत्संगति है, क्योंकि दुर्जनों का संग दुःखद होता है। दुष्टों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दूसरों का उत्थान देखकर जलते रहते हैं। दूसरों की निन्दा करने तथा सुनने में वे बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। वे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सभी अवगुणों की खान हैं। कपट का व्यवहार करने में तथा कुटिलता दिखलाने में ये बड़े ही चतुर होते हैं। ये अकारण ही दूसरों से शत्रुता करते हैं। यदि कोई इनका हित करता है, तो वे उनके उपकार को भूलकर उनका अपकार ही करते हैं। ये दूसरों की सम्पत्ति तथा स्त्री पर दृष्टि लगाये रहते हैं। ये माता-पिता तथा गुरुजन किसी में श्रद्धा नहीं रखते, देवताओं को नहीं मानते, भगवान् की कथा से प्रेम नहीं करते तथा सभी से द्वेष-बुद्धि रखते हैं। अतः जो इनकी संगति में पड़ गया, वे उन्हें अपने मधुर वचनों से प्रभावित करके अपने समान बना देते हैं। अतः भूलकर भी उनका साथ नहीं करना चाहिए, क्योंकि कुसंगति से सदा दुःख ही दुःख मिलता है। अतः—

भूलेहु संगति करेउ न काऊ।
× × ×
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।

सज्जनों का स्वभाव बड़ा ही सुखद होता है। ये दूसरों के दुःख को देखकर दुःखी तथा सुख को देखकर सुखी होते हैं। ये काम, क्रोध, लोभ तथा मोहादि विकारों से सदा दूर रहते हैं। ये सरलचित्त, उपकारी, धर्मात्मा, भगवद्भक्त, माता-पिता एवं गुरुजनों में श्रद्धा तथा निष्ठा रखने वाले, अकारण दूसरों की भलाई करने वाले अनेक गुणों से युक्त होते हैं। जो इनकी संगति में पड़ गया वह सुखी हो गया। वेद तथा सरस्वती भी सज्जनों के गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। भगवान् राम देवर्षि नारदजी से कहते हैं कि—

सुनु मुनि साधुन्ह के गुन जेते।
कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

सत्संगति की महिमा अपार है। यह बुद्धि की जड़ता को दूर करती है,

सत्य वचन में प्रवृत्त करती है, मान बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न रखती है तथा चारों दिशाओं में यश को फैलाती है। इस प्रकार सत्संगति मनुष्य का क्या नहीं करती ?

'जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्' ॥

सत्संगति की महिमा सुनकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। इसकी महिमा छिपी नहीं है, क्योंकि महर्षि वाल्मीकि, देवर्षि नारद तथा ऋषि अगस्त्य सभी ने अपने-अपने मुख से अपने जन्म-कर्म की कथा कहकर इसकी महिमा का प्रतिपादन किया है। सत्संग के द्वारा ही इन्हें ज्ञान हुआ और ये सभी ऋषि-महर्षि के रूप में संसार में प्रतिष्ठित हुए—

सुनि अचरज करै जनि कोई।
सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥
बालमीक नारद घटजोनी।
निज निज मुखन कही निज होनी ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहु बेद न आन उपाऊ ॥

अतः मनुष्यों को सदैव सत्संग ही में मन लगाना चाहिए, कुसंग में नहीं, क्योंकि नरक का वास अच्छा है, कुसंगति में रहना अच्छा नहीं—

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देई बिधता ॥

यदि कोई विधि-वश कुसंगति में पड़ गया हो और अपने को सम्भाल कर सुसंगति में आ जाय, सज्जन उन्हें वैसे ही सुधार देते हैं, जैसे पारसमणि लोहे को कञ्चन बना देता है—

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

अतः जीवन-निर्माण, जीवन-विकास तथा जीवन के सुख के लिए सत्संगति परम आवश्यक है।

(१४) विजयादशमी

आश्विन शुक्लपक्ष दशमी को विजयादशमी कहते हैं। यह हिन्दुओं का बहुत बड़ा त्योहार है। कहा जाता है कि इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ने लंकाधिपति रावण के ऊपर विजय प्राप्त की थी, जिसके उपलक्ष्य में विजयादशमी का त्योहार मनाया जाता है। इसकी कथा इस प्रकार है—जिस समय लंका में राम-रावण युद्ध हो रहा था, उस समय प्रथम दिन आश्विन कृष्णपक्ष अमावास्या की तिथि थी। भगवान् राम जब अपने अमोघ अस्त्रों के प्रयोग करने पर भी लंकेश रावण को पराजित न कर सके, तब उन्हें चिन्ता ग्रस्त करने लगी। वे सायंकाल युद्धविराम होने पर उदासमुख सुवेल पर्वत पर पहुँचे, उन्हें खिन्न देखकर मंत्रिप्रवर विभीषण ने कहा—'भगवन् ! आपका वदनाब्ज मलिन क्यों हैं ?' भगवान् राम ने कहा—'मंत्रिवर ! आज के प्रथम युद्ध में मेरे अमोघ अस्त्र व्यर्थ हो गये। मैंने देखा कि शक्ति लंकाधिपति रावण को अपने अंक में लेकर उसकी सहायता कर रही है, क्योंकि अपनी आराधना के द्वारा उसने उनको अपने अनुकूल कर लिया है।' भगवान् राम के वचनों को सुन करके मुख्यमंत्री भल्लपति जाम्बवन्त ने कहा—'भगवन् ! जब अधर्मरत रावण साधना से शक्ति को प्रसन्न कर सकता है, तो आप स्वयं धर्मरत भगवान् हैं; दृढ़ आराधना से परमशक्ति को प्रसन्न करके अनायास ही लंकेश पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जब तक आप शक्ति की आराधना में लीन रहेंगे, तब तक युद्ध का भार प्रमुख सेनापतियों पर रहेगा और वीरवर लक्ष्मण सेना के नायक रहेंगे।' मन्त्रिवर जाम्बवन्त के वचन सुनते ही भगवान् राम का कमलमुख प्रसन्न हो गया और उन्होंने पवनपुत्र हनुमान् से कहा—'हे मारुतनन्दन ! शक्ति की आराधना के लिए मुझे प्रातःकाल १०८ नीलकमल पुष्प चाहिए'। भगवान् राम ने आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को महाशक्ति दशभुजा दुर्गा का आवाहन करके उनकी आराधना प्रारम्भ कर दी। जब कठिन से कठिन साधना करते हुए आठ दिन व्यतीत हो गये, तब नवम दिन भगवती महाशक्ति ने राम की परीक्षा-हेतु एक नीलकमल चुरा लिया। जब भगवान् राम ने अपनी पूजा की पूर्णाहुति-हेतु अन्तिम एक नीलकमल पुष्प ग्रहण करने के लिए अपना हाथ बढ़ाया, तब इन्दीवर हस्तगत नहीं हुआ, जिससे वे पुनः चिन्तित हो गये और अपने भाग्य को धिक्कारने लगे। उसी समय उन्हें ध्यान आया कि बाल्यावस्था में मेरी माता मुझे 'कमलनयन' कहकर पुकारती थीं।

अतः मेरे निकट अभी दो कमल शेष हैं। मैं उन्हीं में से एक कमलनयन महाशक्ति को अर्पित करके अपनी आराधना की पूर्णाहुति करूँगा। ऐसा निश्चय करके ज्योंही भगवान् राम ने दायें हाथ से कमलनयन को बेंधने के लिए वाम हस्त में तीव्र सर ग्रहण किया, त्योंही ब्रह्माण्ड काँपने लगा, जिससे शीघ्र ही महाशक्ति भगवती दुर्गा ने प्रत्यक्ष होकर उनका हाथ पकड़ लिया और उनकी दृढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें राक्षसेन्द्र रावण पर विजय का आशीर्वाद दिया—

'जय होगी जय होगी हे पुरुषोत्तम नवीन'।

भगवान् राम ने भगवती महाशक्ति की नव दिनों तक आराधना की, जो नवरात्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसके पश्चात् दसवें दिन लंकेश पर विजय प्राप्त की, जो विजयादशमी के नाम से विख्यात हुई।

विजयादशमी के अवसर पर भारत में सर्वत्र बड़े नगरों तथा ग्रामों में गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित के आधार पर रामलीला होती है, जिसमें लंकेश रावण का कागज की प्रतिमा बना कर जलाई जाती है। इसका तात्पर्य है—अधर्म के ऊपर धर्म की विजय। भगवान् राम धर्म के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का प्रतीक है। इस अवसर पर बहुत अच्छा मेला भी लगता है। वाराणसी के निकट गंगा पार रामनगर की रामलीला विशेष प्रसिद्ध है, क्योंकि यहाँ भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी से आश्विन शुक्ल पूर्णिमा तक भगवान् विष्णु के क्षीरसागर की झाँकी से प्रारम्भ होकर भगवान् राम के अवतार से लेकर लंकेश रावण-वध एवं अयोध्या के दिव्य सिंहासन पर भगवान् राम के राज्यतिलक तक समस्त लीलाएँ मास पर्यन्त भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती हैं—

राम राज्य बैठे त्रय लोका।
हरषित भये गए सब सोका॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहि काहुहि व्यापा॥

रामलीला का एकमात्र यही उद्देश्य है कि मनुष्य को भगवान् राम के समान ही आचरण करना चाहिए, रावण के समान नहीं—

'रामवत् आचरितव्यं न रावणवत्।'

विजयादशमी के अवसर पर आबाल वृद्ध नर-नारी सभी में उल्लास

रहता है। बड़े लोग बालकों को रामलीला तथा मेला हेतु रुपये-पैसे, मिठाइयाँ आदि देते हैं तथा स्वयं मिठाई का आनन्द लेते हैं।

विजयादशमी यात्रा का भी दिन है। इसी दिन अपने कान या सिर पर नवरात्र का अंकुरित जौ रखकर लोग घर से यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं। इन दिन नीलकंठ का दर्शन शुभ माना जाता है। यह प्रत्येक कार्य के लिए शुभ मुहूर्त है। इस प्रकार विजयादशमी का जितना भी महत्त्व-वर्णन किया जाय, वह स्वल्प है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय—वाराणसी

की

परीक्षाओं में सफलता

हेतु

अमर गाइड

प्रकाशक
भारतीय विद्या संस्थान
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
सी २७/५९, जगतगंज, वाराणसी—२२१००२